বৰ্ষাৰণ্যম
वर्षारण्यम

ই - আলোচনী, সংস্কৰণ-৭, বৰ্ষ-২০২৪

ई-पत्रिका, संस्करण-VII, वर्ष- 2024

ভা.ব.অ.শি.প.- বৰ্ষাৰণ্য গৱেষণা প্ৰতিষ্ঠান, যোৰহাট
ভাৰতীয় বন গৱেষণা আৰু শিক্ষা পৰিষদ
পৰিৱেশ, বন আৰু জলবায়ু পৰিৱৰ্তন মন্ত্ৰালয়
(ভাৰত চাৰকাৰ অধিনস্থ এক স্বায়ত্ব পৰিষদ)

भा.वा.अ.शि.प.- वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट
भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून
पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय
(भारत सरकार के अधीनस्थ एक स्वायत्त परिषद्)

ICFRE-RFRI/Periodicals/2025/01

संरक्षक

डॉ. नितिन कुलकर्णी, निदेशक
भा.वा.अ.शि.प.-व.व.अ.सं.,जोरहाट

সম্পাদক মণ্ডল

डॉ. विश्वनाथ शर्मा, वैज्ञानिक-सी
श्री असीम चेतिया, पुस्तकालय सूचना सहायक
श्री शंकर शॉ, कनिष्ठ अनुवाद अधिकारी

कवरपेज डिज़ाइन एवं साज-सज्जा

श्री भुबन कछारी, वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी,

বৰ্ষাৰণ্যম

হিন্দী - অসমীয়া
ই - আলোচনী,
সংস্কৰণ - ৭
বৰ্ষ - ২০২৪

वर्षारण्यम

हिंदी–असमिया
ई–पत्रिका
संस्करण–VII,
वर्ष–2024

प्रकाशक

हिन्दी प्रकोष्ठ
भा.वा.अ.शि.प.-वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट
(पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय की एक स्वायत्त संस्थान)
ए.टी. रोड (पूर्व), डाकघर- चेनीजान, जोरहाट-785010, असम
फोन-91-0376-2305101
ईमेल- dir_rfri@icfre.gov.in

©: ICFRE-RFRI, Jorhat (2025)

ई-पत्रिका में व्यक्त तथ्य, आंकड़े और विचार रचनाकारों के अपने है, सम्पादक मंडल अथवा संस्थान का इनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

भा. वा. अ. शि. प.- वर्षा वन अनुसंधान संस्थान
ICFRE-RAIN FOREST RESEARCH INSTITUTE
भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद
Indian Council of Forestry Research and Education
पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय,भारत सरकार
(Ministry of Environment, Forest & Climate Change, Govt. of India)
देववन, सोताइ, जोरहाट - 785010 (असम) / Deovan, Sotai, Jorhat- 785010 (Assam)

सत्यमेव जयते

Dr. Nitin Kulkarni
Director

संदेश

भा.वा.अ.शि.प.- वर्षा वन अनुसंधान संस्थान (भा.वा.अ.शि.प.- व.व.अ.सं.), जोरहाट, असम की स्थापना अप्रैल, 1988 में पूर्वोत्तर भारत में वानिकी क्षेत्र के विकास एवं महत्त्वपूर्ण अनुसंधान कार्य के लिए हुआ। इससे पूर्व वर्ष-1976 में वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून के एक क्षेत्रीय केंन्द्र के रूप में बर्निहाट (असम) में इसकी स्थापना हो चुकी थी। यह संस्थान भारतीय वानिकी अनुसंधान और शिक्षा परिषद् (भा.वा.अ.शि.प.), देहरादून के नौ अनुसंधान संस्थानों में से एक हैं जो पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार के अंतर्गत एक स्वायत्त निकाय और राष्ट्रीय वानिकी अनुसंधान प्रणाली में प्रमुख अनुसंधान संगठन हैं।

भा.वा.अ.शि.प.- व.व.अ.सं., जोरहाट में भारत सरकार की राजभाषा नीति एवं राजभाषा हिन्दी का कार्यान्वयन हमारा संवैधानिक दायित्व है। राजभाषा नियमों के तहत संस्थान वर्ष-2015 से नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (न.रा.का.स.), जोरहाट का सदस्य कार्यालय है। संस्थान के अंतर्गत आ रहे सभी केंद्र, प्रभाग, अनुभाग एवं प्रकोष्ठ अपने-अपने सरकारी कामकाज में हिन्दी का प्रगामी प्रयोग बढ़ाने के लिए प्रतिबद्ध है। संस्थान में राजभाषा के बेहतर कार्यान्वयन के लिए राजभाषा (हिन्दी) प्रकोष्ठ स्थापित की गई है। संस्थान में राजभाषा के प्रति उत्साहजनक वातावरण तैयार करने के लिए वर्ष भर विभिन्न गतिविधियों का आयोजन किया जाता है। इसके अंतर्गत तिमाही समीक्षा बैठकें, राजभाषा कार्यशालाएँ, राजभाषा संगोष्ठियाँ, राजभाषा प्रशिक्षण एवं राजभाषा पखवाड़ा आदि प्रमुख हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि ये सभी गतिविधियाँ भारत सरकार द्वारा जारी राजभाषा संबंधी लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायक सिद्ध होंगी।

मुझे यह सूचित करते हुए हर्ष हो रहा है कि नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (न.रा.का.स.), जोरहाट द्वारा जोरहाट शहर में अवस्थित केंद्र सरकार के कार्यालयों के बीच वर्ष 2023-24 के दौरान राजभाषा हिन्दी कार्यान्वयन के बेहतर प्रदर्शन एवं उत्कृष्ट कार्य संपादन के लिए भा.वा.अ.शि.प.-वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट को नराकास की 42वीं बैठक में दिनांक 06 फरवरी, 2025 को प्रथम पुरस्कार के रूप में शील्ड के साथ प्रशस्ति पत्र प्रदान किया गया। इतना ही नहीं, हमारे मुख्यालय भारतीय वानिकी अनुसंधान संस्थान, देहरादून के "ग" क्षेत्र स्थित संस्थानों में राजभाषा हिन्दी के कार्यान्वयन में उत्कृष्ट प्रदर्शन के लिए संस्थान को वर्ष 2023-24 का "राजभाषा प्रोत्साहन पुरस्कार" के रूप में शील्ड सहित प्रशस्ति पत्र प्रदान किया गया। इस सम्मान से प्रेरित होकर संस्थान आगे भी बेहतर राजभाषा कार्यान्वयन की ओर अग्रसर है और रहेगा।

मुझे विश्वास है कि **वर्षारण्यम्-2024, ई-संस्करण-7, हिन्दी-असमीया द्विभाषी वार्षिक ई-पत्रिका** संस्थागत अनुसंधान और राजभाषा गतिविधियों पर जानकारी के एक स्रोत के रूप में काम करेगा। मैं उन सभी के प्रति अपनी गहरी कृतज्ञता व्यक्त करता हूं जिन्होंने इस ई-पत्रिका के संयोजन व संपादन में योगदान दिया है। मैं संस्थान के अधिकारियों और कर्मचारियों के साथ-साथ बाह्य संस्थानों के रचनाकारों को बधाई देता हूँ जिन्होंने इस पत्रिका के लिए अपनी रचनाएं दी हैं तथा अन्य उन सभी लेखकों/रचनाकारों से आह्वान करता हूँ कि वे भी इस पत्रिका के माध्यम से अपने विचार तथा ज्ञान साझा करें।

हार्दिक शुभकामनाओं के साथ!

दिनांकः 28 मार्च, 2024

(डॉ. नितिन कुलकर्णी)

पोस्ट ऑफ़िस /Post office: सोताइ /Sotai, जोरहाट (असम) /Jorhat (Assam) – 785010, ईमेल/Email: dir_rfri@icfre.org
निदेशक /Director: फ़ोन /Phone: +91376-2305101 (कार्या./W), +91-376-2305102 (नि./R), +91-376-2305130, (पी.एस/PS), 09425325430

सत्यमेव जयते

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, जोरहाट
TOWN OFFICIAL LANGUAGE IMPLEMENTATION COMMITTEE, JORHAT
(established by Govt. of India, Ministry of Home, under the Chairmanship of Director, NEIST : all Central Govt offices of Jorhat are member)

उत्तर-पूर्व विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी संस्थान, जोरहाट, आसाम : भारत
NORTH-EAST INSTITUTE OF SCIENCE AND TECHNOLOGY] JORHAT,ASSAM:INDIA
Ph:0376+ 2370012/2372523(Chairman) EPABX:2370117*2227 (TOLIC Office)
Gram: RESEARCH Fax : 0376-2370011/ 2370115
E mail : director@neist.res.in /ajaykumar@neist. res.in
Website : www.neist.res.in

सचिव
नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, जोरहाट

संदेश

वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट द्वारा असमीया एवं राजभाषा हिन्दी मिश्रित **ई-पत्रिका 'वर्षारण्यम'** के **अंक-7 (2024)** का लोकार्पण एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इस अवसर पर संस्थान के सभी विद्वानों, शोधकर्ताओं एवं संपादकीय टीम को हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ।

'वर्षारण्यम' केवल एक पत्रिका नहीं, बल्कि भाषा और विज्ञान के समन्वय का एक प्रेरणादायक प्रयास है, जो वर्षा वनों से संबंधित अनुसंधान, पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास के प्रति जागरूकता को बढ़ावा देने का कार्य कर रही है। इस पत्रिका का प्रत्येक अंक ज्ञान, शोध और नवीनतम अनुसंधानों को एक मंच प्रदान करता है, जिससे पाठकों को विज्ञान और प्रकृति के अद्भुत पहलुओं को समझने का अवसर मिलता है।

इस नवीन अंक के माध्यम से हमें वर्षा वनों के संरक्षण, जैव विविधता के महत्व और सतत विकास के नवीन पहलुओं को समझने का अवसर मिलेगा। यह पत्रिका न केवल शोधार्थियों और पर्यावरणविदों के लिए उपयोगी होगी, बल्कि उन सभी पाठकों के लिए भी प्रेरणादायक सिद्ध होगी, जो प्रकृति एवं भाषा दोनों से प्रेम रखते हैं।

हम इस पत्रिका के निरंतर प्रकाशन और इसकी सफलता की कामना करते हैं तथा आशा करते हैं कि **'वर्षारण्यम'** आने वाले समय में और भी नई ऊंचाइयों को छुएगी।

🌱💐 हार्दिक शुभकामनाएँ! 💐🌱

सादर,

अजय कुमार

संपादकीय

वर्षारण्यम हिन्दी एवं असमीया (द्विभाषी रूप) में प्रकाशित होने वाली भा.वा.अ.शि.प.- वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट, असम की एक वार्षिक ई-पत्रिका है । इसके सप्तम संस्करण के प्रकाशन के लिए हमें संपादन कार्य करने में प्रसन्नता हो रही हैं।

भा.वा.अ.शि.प.- वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट कार्यालय में राजभाषा हिन्दी में कार्य का माहौल तैयार करने के लिए वर्षारण्यम का प्रकाशन वर्ष-**2015** से ही होता आ रहा है। इसी क्रम में, इस वर्ष वर्षारण्यम ई-पत्रिका संस्करण-सप्तम (वर्ष- **2024**) का प्रकाशन कर रहे हैं। इस पत्रिका में कार्यालय के सामान्य कार्यकलापों तथा कार्यालय के कामकाज से संबंधित मौलिक आलेख प्रकाशित किए गए है।

इस पत्रिका में दो भारतीय भाषाओं अर्थात् हिन्दी व असमीया भाषा के लेख, आलेख, कविता एवं राजभाषा गतिविधियों को शामिल किया गया है । कार्यालय में अधिकारियों एवं कर्मचारियों के प्रतिभा को दर्शाने एवं निखारने के लिए प्रतिवर्ष ई-पत्रिका को द्विभाषी अर्थात् हिन्दी और असमीया में प्रकाशित करने का मुख्य उद्देश्य संस्थान के हिन्दी/हिन्दीतर भाषा-भाषी अधिकारियों एवं कर्मचारियों को प्रेरित व प्रोत्साहित करना है।

इस पत्रिका के उत्तरोत्तर सुधार एवं विकास के लिए आपके अमूल्य सुझाव एवं आगामी संस्करण के लिए आपकी मौलिक रचनाएं सादर आमंत्रित हैं।

धन्यवाद।

डॉ. विश्वनाथ शर्मा
श्री असीम चेतिया
श्री शंकर शॉ

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	लेखक/लेखिका	पृ.सं.
1.	भारत में मैन्ग्रोव वनों की कृषि में उपयोगिता एवं भविष्य में होने वाले प्रभावों का वर्णन	संदीप कुमार, हेमन्त कुमार और राजेश कुमार अग्रहरि	1-4
2.	खासी पाइन लकड़ी उत्पादनः भूमिधारकों के लिए लाभकारी विकल्प	दिनेश कुमार मीना, अजय कुमार और एलेक्स एंगोम	5-11
3.	माइक्रो और नैनोप्लास्टिक्स के पर्यावरण और पारिस्थितिकी तंत्र पर प्रभाव का समीक्षात्मक अध्ययन	सोनकेश्वर शर्मा	12-14
4.	बोडोलैंड प्रादेशिक क्षेत्र, असम से साल (*Shorea robusta*) पर *ग्रोट टुसोक मोथ* (*Calliteara grotei*) के प्रकोप पर एक वैज्ञानिक लेख	प्रसून कर्माकर, अक्षय मिश्रा, अरबिंदा डेका, बिनंदा कुमार रजक और बिजुमोनी कलिता दत्ता	15-18
5.	मृदा और जल संरक्षण में पूर्वोत्तर भारत की पारंपरिक खेती की भूमिका	किंगशुक मोदक	19-21
6.	आजीविका संसाधन के रूप में बांस के अंकुर और पूर्वोत्तर भारत में उनकी रूपात्मक विविधता	मुदांग यम्पी, सोनकेश्वर शर्मा, पंकज गोगोई और परिश्मिता हजारिका	22-24
7.	प्राकृतिक उर्वरकों के माध्यम से *फ़ीबी गोलपेरेन्सिस* (*Phoebe goalparensis*) पौधों में पोटेशियम का प्रबंधन	लख्या बरूआ, गुरप्रीत कौर भमरा, काजल गुप्ता, सुमोना चेतिया और राजीब कुमार बोरा	25-26
8.	पूर्वोत्तर भारत में जैव विविधता संरक्षण: खतरे और संरक्षण के प्रयास	राकेश कुमार प्रजापत, अमिताव रॉय, रेखा माहातो, प्रेम चंद ज्ञानी, कर्मा ग्यालपो भूटिया और सत्यम बरदलै	27-30
9.	चाय में डाइबैक उत्पन्न करने वाले *फ्यूजेरियम सोलानी* (*Fusarium solani*) का जैव नियंत्रण	काजल गुप्ता, गुरप्रीत कौर भामरा और सुमोना चेतिया	31-33
10.	पूर्वोत्तर भारत का भोज्य 'हरा सोना': मुली बांस (*मेलोकैना बैसीफेरा*)	अमिताव रॉय, राकेश कुमार प्रजापत, प्रेम चंद ज्ञानी, कर्मा गयाल्पो भूटिया, अंशुमान पटेल, रेखा महतो और सत्यम बरदलै	34-35
11.	बाँस की कोपलें (बैम्बू शूट): पूर्वोत्तर भारत का मुख्य भोजन	सोनकेश्वर शर्मा, मुदांग यम्पी, परिश्मिता हजारिका और पंकज गोगोई	36-39
12.	*रोडोडेंड्रोन निवियम* : हिमालय की खूबसूरत की एक झलक	प्रेम चंद ज्ञानी, रेखा माहातो, पूजा यादव, सोनकेश्वर शर्मा और विश्वनाथ शर्मा	40-42

13.	दिमा हसाओ, असम : आदिवासी समुदायों में बांस के बहुमुखी उपयोग की अद्भुत परंपरा	मुना तामांग	43-46
14.	उत्तर-पूर्वी भारत का 'जॉय' सुगंधित वृक्ष: *मैगनोलिया चंपाका*	अमिताव रॉय, राकेश कुमार प्रजापत, प्रेम चंद ज्ञानी, कर्मा जी भूटिया, अंशुमान पटेल, रेखा महतो और सत्यम बरदलै	47-48
15.	*अरिस्टोलोचिया कैथकार्टि* (*Aristolochia cathcartii*): एक दुर्लभ औषधीय पौधा	मिताली मैहता	49-51
16.	गंभीर रूप से लुप्तप्राय एक्विलारिया खासियाना प्रजाति के संरक्षण पर परिप्रेक्ष्य	रेखा माहातो	52-53
17.	मोलाई कथोनी आरक्षित वनः असम की महान हरित दीवार	तारा कुमारी और अजय कुमार	54-56
18.	हेलिकोनिया की रंगीन दुनिया: उष्णकटिबंधीय आश्चर्यों का अनावरण	अंकुर ज्योति सइकीया और प्रदीप कुमार हजारिका	57-59
19.	वन उपयोग और जैव-प्रवर्तनः हाल की प्रगति और चुनौतियाँ	पी. एस. श्रीकांत	60-62
20.	वन प्रबंधन में क्रांति: पेड़ों के लिए उन्नत जेनेटिक इंजीनियरिंग तकनीकें	प्रेम चंद ज्ञानी, रेखा माहातो, पूजा यादव, सोनकेश्वर शर्मा और विश्वनाथ शर्मा	63-65
21.	ঔষধি গুণেৰে সমৃদ্ধ বাণিজ্যিক উদ্ভিদ-গন্ধ কচু	ইলোৰা দত্ত বৰা	66-71
22.	ধৰিত্ৰী আইৰ জ্বৰ- পাৰিপাৰ্শ্বিকতাৰ প্ৰতি প্ৰত্যাহ্বান	ৰুণমী দেৱী বৰঠাকুৰ	72-74
23.	স্বৰ যোগ	ভূৱন কছাৰী	75-80
24.	উত্তৰ-পূব ভাৰতত গছৰ মছলাৰ খেতিৰ সম্ভাৱনা	সুমনা চেতিয়া, কাজল গুপ্তা আৰু গুৰপ্ৰীত কৌৰ ভামৰা	81-84
25.	অৰণ্য	লোহিত চন্দ্ৰ তামুলী	85-86
26.	स्वरचित हिन्दी कविता – धरती की पुकार	मुना तामांग	87
27.	संस्थान की गतिविधियाँ/उपलब्धियाँ	हिन्दी प्रकोष्ठ, भा.वा.अ.शि.प.- व.व.अ.सं., जोरहाट	88-104

भारत में मैन्ग्रोव वनों की कृषि में उपयोगिता एवं भविष्य में होने वाले प्रभावों का वर्णन

संदीप कुमार[1], हेमन्त कुमार[2], राजेश कुमार अग्रहरि[3]
[1]शोध छात्र, कृषि सांख्यिकी, यूजीसी नेट (जनसंख्या अध्यन),
[2]शोध छात्र, फल विज्ञान विभाग,
[3]शोध छात्र, कृषि मौसम विज्ञान विभाग
आचार्य नरेन्द्र देव कृषि विश्वविद्यालय एवं प्रोद्योगिकी कुमारगंज, अयोध्या (224229) उत्तर प्रदेश.
पत्राचार लेखक- हेमन्त कुमार[2]

परिचय:

मैन्ग्रोव वन ऐसे वन है जो कि उष्ण जलवायु के तटीय एवं दलदली क्षेत्रों में उगे पाए जाते है। मैन्ग्रोव वनों में विशेष वृक्ष होते है जो मुख्य रूप से गर्म भूमध्यरेखीय जलवायु में समुद्र तट और ज्वारीय नदियों के किनारे नमकीन या खारे जल में उगते है। भारत में लगभग 46 मैन्ग्रोव प्रजाति पाई जाती है। मैन्ग्रोव वन भारत में मुख्य रूप से पश्चिम बंगाल, ओड़िसा, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, केरल, गोवा, गुजरात और अंडमान और निकोबार द्वीप राज्यों में पाए जाते हैं। भारत में शीर्ष तीन सबसे बड़े मैन्ग्रोव वन पश्चिम बंगाल में स्थित सुंदरवन, ओड़िसा में भितरकनिका और तमिलनाडु में पिचावरम मैन्ग्रोव वन है।

भारत वन स्थिति रिपोर्ट, 2021 के अनुसार भारत में मैन्ग्रोव वनों का कुल क्षेत्रफल 4992 वर्ग किलो मीटर है। जो देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 0.15% है। पश्चिम बंगाल में सुंदरवन विश्व का सबसे बड़ा मैन्ग्रोव वन क्षेत्र है। इसे यूनेस्को के विश्व धरोहर स्थल के रूप में शामिल किया गया है।

महत्त्व:

मैन्ग्रोव वन कई प्रकार से कृषि के लिए उपयोगी होते है जो सारणीबद्ध दिये गये है-

1. जैव विवधता संरक्षण
2. तटीय संरक्षण
3. कार्बन पृथक्करण
4. मत्स्य पालन एवं आजीविका
5. जल की गुणवत्ता में सुधार
6. पर्यटन एवं मनोरंजन

जैव विवधता संरक्षण: मैन्ग्रोव वन कई प्रकार के पौधों और जानवरों को आवास प्रधान करता है। जो विभिन्न सागरीय और स्थिलिय जीवों के प्रजनन, संवर्धन एवं चारागाह के रूप में कार्य करते है जैसे सुंदरवन में रॉयल बंगाल टाइगर, इरावदी डॉल्फिन्, रीसस मकाउ तेंदुआ, छोटे भारतीय कस्तूरी बिलाव निवास करते है।

2. तटीय संरक्षण: मैन्ग्रोव तटीय अपरदन, तूफ़ान और सुनामी के प्रति प्राकृतिक बाधा के रूप में कार्य करते है। मैन्ग्रोव वनों का सघन जड़ों और स्तंभ मूलों का उलझा हुआ जाल तटीय अपरदन को रोकता है तथा लहरों एवं धाराओं के तेज प्रभाव को कम करता है।

3. कार्बन पृथक्करण: मैन्ग्रोव बहुत ही प्रभावशाली कार्बन सिंक होते है, जो वायुमंडल से बहुत अधिक मात्रा में कार्बन डाइ-ऑक्साइड को अलग करते है और इसे अपने बायोमास एवं अवसाद के रूप में संगृहीत करते है।

4. मत्स्य पालन एवं आजीविका: मैन्ग्रोव मत्स्य और घोघा के लिए सम्वृधित क्षेत्र प्रदान करके मत्स्य उत्पादन को बढाने के साथ ही आजीविका तथा स्थानीय खाद्य सुरक्षा में योगदान कर मत्स्य पालन का समर्थन करते है।
5. जल की गुणवत्ता में सुधार: मैन्ग्रोव प्राकृतिक फ़िल्टर के रूप में कार्य करते है, जो तटवर्ती जल को खुले समुद्र में पहुचने से पूर्व उसको प्रदूषित होने से रोकता है और जल के पोषक तत्वों की हानि होने से भी बचाते है। जल को शुद्ध करने में पोषक तत्वों की भूमिका समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र के स्वास्थ को बनाए रखने और कमजोर तटों के पारिस्थितिकी तंत्र के संतुलन को बनाए रखने में सहायता करती है।
6. पर्यटन और मनोरंजन: मैन्ग्रोव पर्यावरण, पक्षी अवलोकन, कयाकिंग और प्रकृति आधारित गतिविधियों जैसे मनोरंजक अवसर प्रदान करती है, जो स्थानीय समुदायों के लिए स्थायी आर्थिक विकास को बढ़ावा दे सकते है।

मैन्ग्रोव वनों में आने वाली चुनौतियाँ:

1. पर्यावरण का विनाश और विखंडन
2. जलवायु परिवर्तन और समुद्र स्तर में वृद्धि
3. प्रदूषण और संदूषण
4. एकीकृत प्रबंधन का अभाव

पर्यावरण का विनाश और विखंडन: कृषि शहरीकरण, जलीय कृषि और बुनियादी ढांचे के विकास के साथ-साथ विभिन उद्देश्यों के लिए मैन्ग्रोव वनों का सफाया किया जाना। इस तरह की गतिविधियों से मैन्ग्रोव आवासों का विखंडन और हानि होती है जिससे उनके पारिस्थितिकी तंत्र और जैव-विविधतामें कई प्रकार की बाधा होती है। मैन्ग्रोव को झींगा फार्मों और अन्य व्यवसायिक उपयोगों में परिवर्तित करना भी बहुत हानिकारक सिद्ध हुआ है।

जलवायु परिवर्तन और समुद्र स्तर में वृद्धि: जलवायु के परिवर्तन के कारण समुद्र का बढ़ता हुआ जल स्तर भी मैन्ग्रोव वनों के लिए एक गंभीर समस्या है। जलवायु परिवर्तन के कारण चक्रवात और तूफ़ान जैसी चरम मौसमी घटनाएं भी सामने आती है, जो मैन्ग्रोव वनों को गंभीर नुकसान पहुँचा सकती है।

प्रदूषण और संदूषण: कृषि अपवाह, औद्योगिक निर्वहन एवं अनुचित अपशिष्ट निपटान से होने वाला प्रदूषण मैन्ग्रोव आवासों को दूषित करता है। भारी मेंटल, प्लास्टिक, मानवजनित प्रदूषक इन पारिस्थितिकी तंत्रों पर प्रतिकूल प्रभाव डालते है।

एकीकृत प्रबंधन का आभाव: कई बार देखा जाता है कि मैन्ग्रोव वनों को प्रवाल भित्तियों और सीग्रास बेड जैसे आसन्न पारिस्थितिकी तंत्रों के साथ उनके अंतर्संबंध पर विचार किये बिना पृथक रूप से प्रबंधित किया जाता है।

भविष्य की राह

भविष्य में मैन्ग्रोव वनों की उपयोगिता को देखते हुए कई प्रकार से इनके बचाव के साथ-साथ हानि को रोकना होगा। हम कई प्रकार की आधुनिक तकनीकों को उपयोग में लाकर मैन्ग्रोव वनों को बचा सकते हैं।

1. मैन्ग्रोव एडॉप्शन कार्यक्रम
2. मैन्ग्रोव अनुसन्धान एवं विकास विभाग
3. ड्रोन निगरानी एवं कृत्रिम बुद्धिमत्ता
4. मैन्ग्रोव वनों के प्रति लोगों को सजग बनाकर

मैन्ग्रोव एडॉप्शन कार्यक्रम: इस कार्यक्रम के तहत हम एक सार्वजनिक संचालित पहल शुरू कर सकते है, जिससे समाज के व्यक्ति, कॉर्पोरेट और संस्थान मैन्ग्रोव क्षेत्र के हिस्से को अडॉप्ट कर सकें। प्रतिभागी अडॉप्ट किये गये क्षेत्र के रखरखाव, सुरक्षा और बहाली, स्वामित्व एवं सामूहिक ज़िम्मेदारी की भावना को बढ़ावा देने के लिए उत्तरदायी होंगे।

मैन्ग्रोव अनुसन्धान एवं विकास विभाग: मैन्ग्रोव के संबंध में नवीन अनुप्रयोगों के लिए अनुसन्धान में निवेश करना, जैसे- प्रदूषित पानी को साफ़ करने के लिए फाईटोमेंडीएशन या मैन्ग्रोव पौधों के अर्क से नई दवाये विकसित करना।

ड्रोन निगरानी एवं कृत्रिम बुद्धिमत्ता: मैन्ग्रोव स्वास्थ्य की निगरानी करने और अतिक्रमण या अवैध कटाई से बचाने के लिए उच्च गुणवत्ता वाले कैमरों और ड्रोन तकनीक का प्रयोग किया जा सकता है।

मैन्ग्रोव वनों के प्रति लोगों को सजग बनाकर: आज इतने आधुनिक युग में भी देखा जा सकता है कि मनुष्य कई प्रकार के ज्ञान से अछूता रह जाता है, आज के समय में मैन्ग्रोव वनों के प्रति मानव का ज्ञान इसी का एक उदाहरण है। मैन्ग्रोव वनों की इतनी उपयोगिता होने के बाद भी मानव को मैन्ग्रोव वनों के बारे में अधिक ज्ञान नही हैं। लोगों को मैन्ग्रोव वनों के प्रति सजग बनाने के लिए कई प्रकार के सम्मेलन और गोष्ठी का संचालन करके लोगों को मैन्ग्रोव वनों के प्रति सजग बनाया जा सकता है और इसकी उपयोगिता को समझाया जा सकता है।

मैन्ग्रोव वनों के कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य

1. यूनेस्को 26 जुलाई को मैन्ग्रोव पारिस्थितिकी तंत्र के संरक्षण हेतु अन्तर्राष्ट्रीय दिवस के रूप में मनाया जाता है।
2. सुंदरवन विश्व का पहला मैन्ग्रोव वन है, जिसे 1892 में वैज्ञानिक प्रवंधन के अधीन लाया गया।
3. भारत में मैन्ग्रोव (संरक्षण) अधिनियम 1986 तथा तटीय क्षेत्र विनियमों द्वारा संरक्षित है।
4. पश्चिम बंगाल > गुजरात >अंडमान निकोबार >आन्ध्र प्रदेश (ISFR-2021)

****

खासी पाइन लकड़ी उत्पादनः भूमिधारकों के लिए लाभकारी विकल्प

दिनेश कुमार मीना[1], अजय कुमार[2] और एलेक्स एंगोम[1]
[1]भा.वा.अ.शि.प.- वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट
[2]भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् (मुख्यालय), देहरादून

परिचय

लकड़ी एक महत्त्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है, जिसका उपयोग निर्माण, फर्नीचर, कागज और अन्य उद्योगों में किया जाता है। भारत, जो कभी सागौन (टीक) और अन्य कठोर लकड़ियों की प्रचुरता के लिए प्रसिद्ध था, अब अपनी लकड़ी की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए संघर्ष कर रहा है। बढ़ती जनसंख्या, शहरीकरण, और औद्योगिकीकरण ने लकड़ी की खपत को कई गुना बढ़ा दिया है, लेकिन घरेलू उत्पादन इसकी पूर्ति नहीं कर पा रहा है। इसकें परिणामस्वरूप, देश को लकड़ी के आयात पर अत्यधिक निर्भर रहना पड़ता है। लकड़ी की इस बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए देश में वृक्षारोपण वानिकी (plantation forestry) को व्यापक रूप से बढ़ावा दिया जा रहा है और हाल के वर्षों में इस क्षेत्र में निजी क्षेत्र की भागीदारी, सामुदायिक वानिकी कार्यक्रम और सार्वजनिक-निजी भागीदारी (PPP) के माध्यम से निवेश में वृद्धि हुई है।

वैश्विक बाजार में लकड़ी की मांग लगातार बढ़ रही है, जोकि मुख्य रूप से निर्माण, फर्नीचर और कागज उद्योगों में लकड़ी का उपयोग होने के कारण है। इंटरनेशनल ट्रॉपिकल टिंबर ऑर्गेनाइजेशन (ITTO) के अनुसार, उत्पादक देशों से प्रसंस्कृत लकड़ी उत्पादों का निर्यात तीन गुना बढ़ गया है। विकसित अर्थव्ययस्थाएं जैसे अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, जापान और यूरोप के प्रमुख देश (जर्मनी, फ्रांस, नीदरलैंड) लकड़ी के सबसे बड़े आयातक हैं। भारत भी लकड़ी का एक प्रमुख उपभोक्ता है, लेकिन इसकी घरेलू उत्पादन क्षमता सीमित है। इसलिए लकड़ी का शुद्ध आयातक (नेटइम्पोर्टर) बना हुआ है और मुख्य रूप से सागौन और चीड़ की गोल लकड़ी (राउंडवुड) का आयात करता है। हालांकि भारत का वन क्षेत्र कुल भूमि का लगभग 21.71% (ISFR, 2021) कवर करता है, फिर भी लकड़ी की उपलब्धता कम बनी हुई है। देश में घरेलू लकड़ी उत्पादन का अधिकांश हिस्सा वनों के बाहर उगने वाले पेड़ों (ToF - Trees Outside Forests) से आता है। आरक्षित वनों से लकड़ी की कटाई पर सख्त प्रतिबंधों के कारण अधिकांश उत्पादन निजी वानिकी और कृषि-वानिकी से आता है। देश में लकड़ी के लिए सागौन (टीक) पारंपरिक रूप से सबसे अधिक पसंद किया जाता है। अन्य प्रमुख लकड़ी प्रजातियों में चीड़, साल, देवदार, फ़र, ओक, पॉपलर, यूकेलिप्टस, डिप्टेरोकार्पस, बबूल और टर्मिनेलिया शामिल हैं जोकि देश के विभिन्न हिस्सों में या तो प्राकृतिक रूप से उगती हैं या फिर कृषि-वानिकी या वृक्षारोपण वानिकी में उगाई जाती हैं। पूर्वोत्तर भारत में भी लकड़ी का व्यापार न केवल कई लोगों को प्रत्यक्ष रूप से लाभ पहुंचाता है, बल्कि पारंपरिक रूप से वनों पर निर्भर समुदायों की आजीविका को भी बनाए रखता है। साथ ही यह अर्थव्यवस्था और जी.डी.पी. में महत्त्वपूर्ण योगदान देता है।

भारत में लकड़ी की मांग लगातार बढ़ रही है। औद्योगिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कच्ची लकड़ी की वार्षिक मांग 100 मिलियन घन मीटर (m^3) तक पहुंच चुकी है। 1998 से 2010 के बीच यह मांग 52 से बढ़कर 95 मिलियन m^3 तक हो गई, और 2030 तक इसकें 213 मिलियन m^3 तक पहुंचने का अनुमान है (ICFRE-IWST, 2021)। हालांकि, पिछले दो दशकों में भारत में वनावरण और वृक्षावरण में वृद्धि हुई है, लेकिन

फिर भी घरेलू लकड़ी उत्पादन की कमी बनी हुई है। भारत लकड़ी की आपूर्ति के लिए घरेलू उत्पादन और आयात दोनों पर निर्भर है। घरेलू उत्पादन में कृषि-वानिकी और वनों के बाहर उगने वाले पेड़ों (ToF) से वार्षिक लकड़ी उत्पादन 2017 में 74.5 मिलियन m³ था, जो 2020 में बढ़कर 85.2 मिलियन m³ हो गया। सरकार द्वारा नियंत्रित वनों से सालाना 2.4-3.0 मिलियन m³ लकड़ी उपलब्ध होती है। भारत मुख्य रूप से सागौन और चीड़ की गोल लकड़ी (roundwood) का आयात करता है। 2014 में लकड़ी उत्पादों का निर्यात मूल्य 80 मिलियन अमेरिकी डॉलर से अधिक था (ITTO, 2015)। वर्ल्ड वाइड फंड फॉर नेचर (WWF) और भारत के योजना आयोग के एक अध्ययन के अनुसार, 2020 तक देश में स्थानीय और विदेशी दोनों स्रोतों से लकड़ी की गंभीर कमी होने की संभावना व्यक्त की गई थी (Monoharan, 2012)।

लकड़ी की बढ़ती मांग को पूरा करने और वनों के संरक्षण को सुनिश्चित करने के लिए सतत वानिकी और वृक्षारोपण वानिकी को बढ़ावा दिया जा रहा है। इस प्रयास में निजी क्षेत्र की भागीदारी बढ़ रही है, और सरकार भी सार्वजनिक-निजी भागीदारी (PPP) के माध्यम से निवेश को प्रोत्साहित कर रही है। अन्य प्रकाष्ठ प्रजातियों के साथ-साथ, भारत में चीड़ (पाइन) का उत्पादन भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है, क्योंकि यह आर्थिक और सौंदर्यात्मक दृष्टि से निर्माण उद्योग के लिए अत्यधिक उपयुक्त है। इसमें चीड़ की दो प्रजातियाँ चीड़ पाइन और खासी पाइन प्रमुख हैं। चीड़ पाइन मुख्यतः पश्चिमी हिमालय की निचली पहाड़ियों में तो वहीं खासी पाइन पूर्वी हिमालय की निचली पहाड़ियों में प्राकृतिक रूप से उगता है।

खासी पाइन (*Pinus kesiya*)

खासी पाइन, एक तेजी से बढ़ने वाली चीड़ की प्रजाति है, जो दक्षिण और दक्षिण पूर्व एशिया के कई हिस्सों में पाई जाती है। यह मुख्य रूप से भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र, विशेष रूप से मेघालय, नागालैंड, मणिपुर, और अरुणाचल प्रदेश में उगती है। यह प्रजाति आमतौर पर 800-2000 मीटर की ऊँचाई पर पाई जाती है, लेकिन 1200-1400 मीटर पर इसकी वृद्धि सबसे अच्छी होती है (Sahni,1990)। यह प्रजाति विभिन्न प्रकार की मृदा में उग सकती है, लेकिन यह गहरी, अच्छी जल निकासी वाली और मध्यम अम्लीय मृदा में सबसे अच्छी वृद्धि करती है। खासी पाइन शुष्क और आर्द्र जलवायु दोनों के प्रति सहिष्णु होती है, जिससे यह पुनर्वनीकरण (reforestation) और वनीकरण (afforestation) कार्यक्रमों के लिए उपयुक्त हो जाती है।

खासी पाइन अपनी उच्च-गुणवत्ता वाली लकड़ी, फर्नीचर, निर्माण कार्य, कागज उत्पादन और उच्च गुणवत्ता वाले रेजिन के लिए महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। इसकें अलावा, यह पारिस्थितिकीय रूप से भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह मृदा अपरदन को रोकने, जल संरक्षण और जैव-विविधताको बनाए रखने में सहायता करती है। इसको इसकें तेज़ी से बढ़ने और विभिन्न जलवायु परिस्थितियों के अनुकूल होने के कारण वृक्षारोपण कार्यक्रमों में प्राथमिकता दी जाती है (Mugunga & Van Wyk, 2003)। यह प्रजाति अपने प्राकृतिक आवास के भीतर और बाहर, दोनों जगह वृक्षारोपण के लिए उपयुक्त पाई गई है।

मेघालय में खासी पाइन का उत्पादन

वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट के हाल ही में मेघालय राज्य में खासी पाइन के वृक्षों की वृद्धि दर का अध्ययन किया (Kumar et al., 2024) और इसकें अनुसार राज्य में खासी पाइन के क्षेत्रों (भूमि) को मुख्य रूप से दो गुणवत्ता वाले क्षेत्रों में वर्गीकृत किया जा सकता है: अच्छी गुणवत्ता वाली भूमि और काम गुणवत्ता वाली भूमि।

अच्छी गुणवत्ता वाली भूमि में मृदा की गहराई मध्यम से गहरी (100-150 सेमी) होती है और इसमें पत्थर के टुकड़े (fragmented rocks) 40% से कम होते हैं। इस प्रकार की क्षेत्रों की मृदा में पोटैशियम, मैंगनीज और कॉपर की मात्रा अधिक होती है। इस प्रकार के क्षेत्रों में चीड़ के पेड़ों की वृद्धि तेज़ होती है अतः पेड़ों की रोटेशन आयु भी कम होती है। वहीं कम गुणवत्ता वाली भूमि की मृदा की गहराई उथली से मध्यम उथली (50-75 सेमी) होती है तथा विभिन पोषक तत्वों के मात्रा भी कम होती है। यहाँ वृक्ष धीमी गति से बढ़ते हैं अतः रोटेशन आयु भी कम होती है। इस अध्ययन के अनुसार, मेघालय में उपरोक्त दोनों प्रकार की भूमि में उगने वाले खासी पाइन की वृद्धि और उत्पादन में विभिन्न आयु वर्गों में महत्त्वपूर्ण अंतर देखा गया।

इनके अनुसार, अच्छी गुणवत्ता वाली भूमि पर 10, 20, 30, 40 और 50 वर्षों में प्रति वृक्ष औसत वृद्धि क्रमशः 0.033, 0.044, 0.043, 0.041 और 0.037 घन मीटर पायी गई और प्रति वृक्ष औसत उत्पादन क्रमशः 0.329, 0.876, 1.296, 1.635 और 1.821 घन मीटर पाया गया। इस प्रकार की भूमि पर खासी पाइन की औसत रोटेशन अवधि 27 वर्ष होती है तथा इस अवधि में औसतन प्रति वृक्ष उत्पाद 42.02 घन फीट (cft) होता है। जैसा कि हम जानते हैं कि किसी भी वृक्षारोपण की आर्थिक वापसी रोपित प्रजातियों की सफलता या उत्तरजीविता प्रतिशत पर निर्भर करती है। इसलिए, विभिन्न उत्तरजीविता प्रतिशत पर कटाई के बाद रोटेशन अवधि में एक उत्पादक को कितनी उपज मिलेगी, इसका अनुमान चित्र-1 में दिए गए हैं-

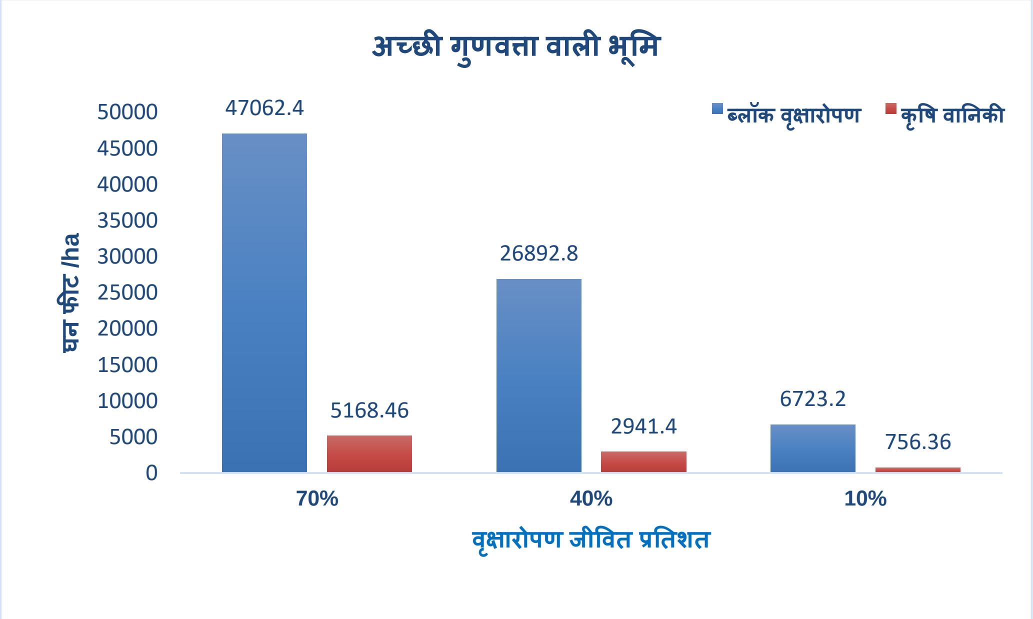

चित्र 1: कम गुणवत्ता वाली भूमि में रोटेशन अवधि में वृक्षारोपण जीवित प्रतिशत के विरुद्ध उपज

वहीं कम गुणवत्ता वाली भूमि पर 10, 20, 30, 40, 50, 60 और 68 वर्षों में वृक्षों की वृद्धि क्रमशः 0.007, 0.014, 0.017, 0.019, 0.019, 0.018 और 0.017 घन मीटर पायी गई और प्रति वृक्ष औसत उत्पादन क्रमशः 0.069, 0.273, 0.511, 0.756, 0.956, 1.103 और 1.166 घन पाया गया। कम गुणवत्ता वाली भूमि पर खासी पाइन की औसत रोटेशन अवधि 48 वर्ष पाई गई है तथा इस अवधि में औसतन प्रति वृक्ष उत्पाद 32.56 घन फीट (cft) मिला है। इसकें अतिरिक्त ऐसी भूमि में विभिन्न वृक्षारोपण जीवित प्रतिशत पर कटाई के बाद रोटेशन अवधि में एक उत्पादक को कितनी उपज मिलेगी, इसका अनुमान चित्र-2 में दिए गए हैं-

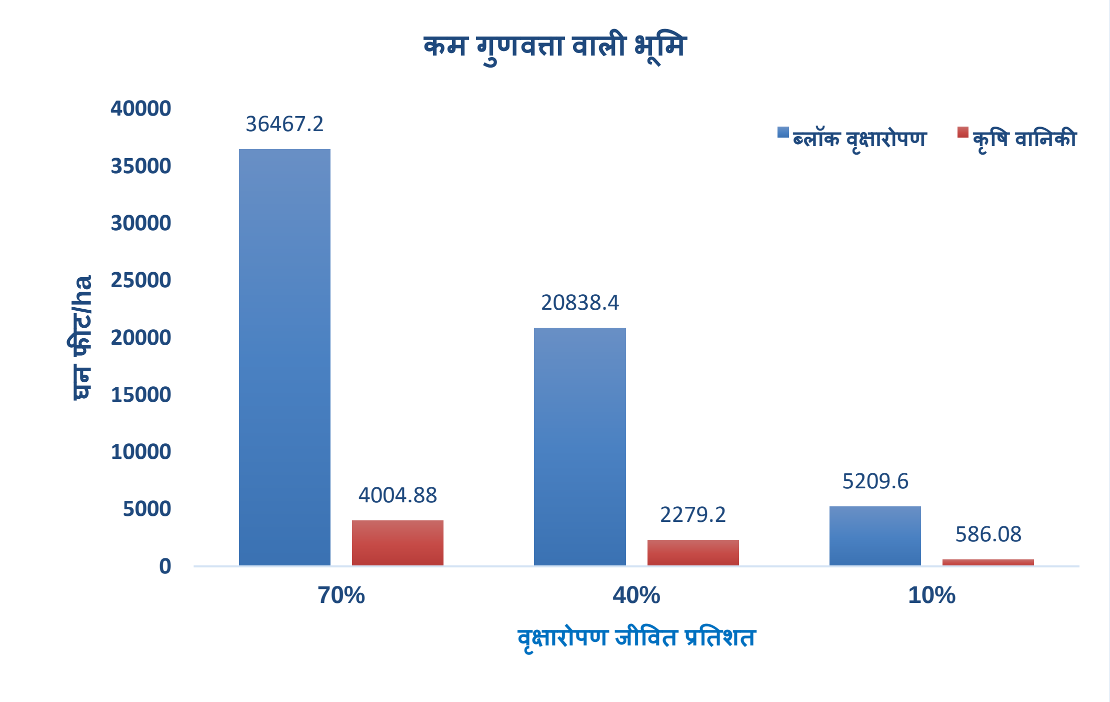

चित्र 2: कम गुणवत्ता वाली भूमि में रोटेशन अवधि में वृक्षारोपण जीवित प्रतिशत के विरुद्ध उपज

खासी पाइन वृक्षारोपण के लिए अवसर

खासी पाइन वृक्षारोपण न केवल किसानों को आर्थिक रूप से लाभ पहुंचाता है, बल्कि यह पारिस्थितिकी तंत्र की स्थिरता बनाए रखने में भी सहायक होता है। मेघालय में अधिकांश खासी पाइन जंगल के साथ-साथ निजी भूमि पर भी पाए जाते हैं। इस प्रजाति के लिए उपयुक्त आवास मुख्य रूप से मेघालय के जयन्तिया हिल्स, री-भोई, पूर्वी खासी हिल्स, और पश्चिमी खासी हिल्स में पाया जाता (चित्र-3) है। वर्तमान में, तीन प्रकार की भूमि उपलब्ध हैं (तालिका 1), जो कम उपयोग में लाई जा रही हैं और जिनका उपयोग वृक्षारोपण के लिए किया जा सकता है:

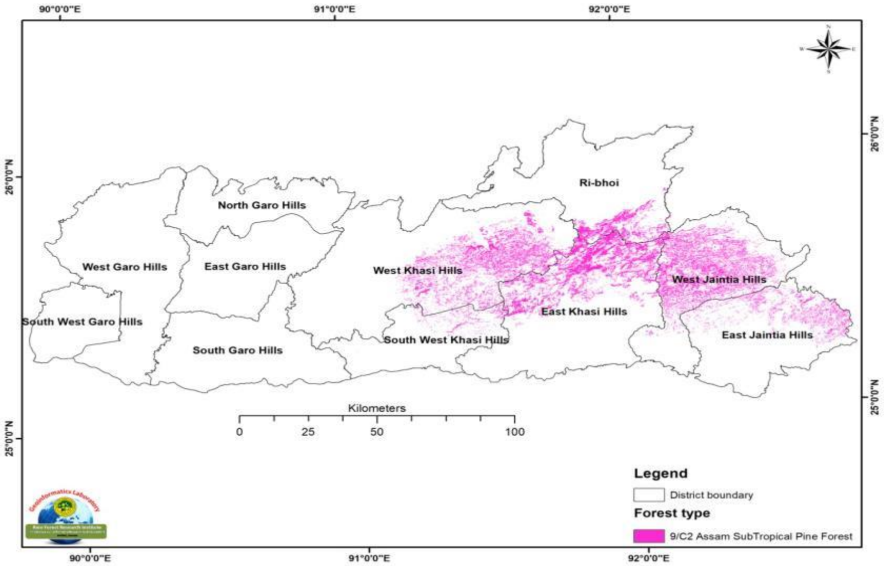

चित्र 3: मेघालय में खासी पाइन के प्राकृतिक आवास क्षेत्रों का वितरण

तालिका 1: मेघालय के विभिन्न जिलों में खासी पाइन वृक्षारोपण के लिए भूमि तथा क्षेत्रफल

ज़िला	वन भूमि (Forest Land)	कृषि भूमि (Agriculture land)	बंजर भूमि (Wasteland)
	खुले जंगल क्षेत्र (हेक्टेयर)	कुल कृषि भूमि क्षेत्र (हेक्टेयर)	कुल कृषि योग्य बंजर भूमि क्षेत्र (हेक्टेयर)
जयन्तिया हिल्स	98589	37646	97402
री-भोई	91268	23827	50888
पूर्वी खासी हिल्स	72356	48978	22444
पश्चिमी खासी हिल्स	135488	17288	97928
कुल	**397701**	**127739**	**268662**

1. वन भूमि (Forest Land): मेघालय का कुल वन क्षेत्र 22,429 वर्ग किलोमीटर में से 17,046 वर्ग किलोमीटर (76%) है, जिसमें 9,160 वर्ग किलोमीटर मध्यम सघन वन (MDF) और 7,326 वर्ग किलोमीटर खुले वन (OF) हैं (ISFR, 2021)। खासी पाइन उगाने वाले क्षेत्रों में खुले जंगल के अंतर्गत कुल 397701 हेक्टेयर भूमि है इन खुले वनों का कारण मुख्यतः झूम खेती और लकड़ी की अत्यधिक कटाई, खनन गतिविधि आदि है (Tiwari & Kumar, 2008; Chaudhary & Bhattacharyya, 2002)। समय आ चुका है की इन खुले वनों को दोबारा घने वनों में तब्दील में किया जाए। ऐसे खुले वनों में अगर 1 हेक्टेयर भूमि में 2.5×2.5 मीटर की दूरी पर 1600 पाइन के पेड़ लगाए जाएं, तो 27 वर्षों में उच्च गुणवत्ता वाली भूमि से अनुमानित कुल उत्पादन 67,232 घन फीट (cft) होगा। इसी अवधि में वार्षिक औसत 4,98,015 रुपए की दर से कुल 1,34,46,400 रुपए कमाए जा सकते है।

2. कृषि भूमि (Agriculture Land): मेघालय एक कृषि-प्रधान राज्य है, जहां 81% आबादी कृषि पर निर्भर है। यहाँ *Pinus kesiya* के साथ कृषि-सिल्विकल्चर प्रणाली अपनाई जाती है, जहां इसे धान, अदरक, हल्दी, मक्का और अरबी के साथ उगाया जाता है (Bhatt & Singh, 2016)। ऐसी प्रणाली में आमतौर पर, 150-200 पेड़/हेक्टेयर की घनत्व दर से वृक्षारोपण किया जाता है (Dhyani & Chauhan, 1995)। यदि 1 हेक्टेयर में 175 पाइन के पेड़ उगाए जाएं, तो 27 वर्षों में अनुमानित कुल उत्पादन 7,353.5 cft होगा। वर्तमान में अच्छी गुणवत्ता वाली भूमि में खड़े पाइन के पेड़ की बाजार दर 200 रुपए प्रति cft है (Kumar et al., 2024)। 27 वर्षों में वार्षिक औसत 54,470 रुपए की दर से कुल 14,70,700 रुपए कमाए जा सकते है।

3. बंजर भूमि (Wasteland): वेस्टलैंड एटलस ऑफ इंडिया (2011) के अनुसार, मेघालय में कुल परती भूमि 4,081.43 वर्ग किलोमीटर है। कृषि योग्य बंजर भूमि (Culturable Wasteland): 3,90,000 हेक्टेयर (राज्य के कुल क्षेत्र फल का 17.38%) (Hills & Umngot, 2014)। इन बंजर भूमि का पुनरुद्धार (reclamation) और उचित उपयोग करके, वृक्षारोपण को बढ़ावा दिया जा सकता है और पाइन तथा अन्य लकड़ी उत्पादक प्रजातियों की खेती की जा सकती है।

निष्कर्षः

खासी पाइन (*Pinus kesiya*) भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण वानिकी प्रजातियों में से एक है, जिसका आर्थिक और पारिस्थितिकीय महत्त्व बहुत अधिक है। इसकें वृक्षारोपण से न केवल स्थानीय अर्थव्यवस्था को बढ़ावा मिल सकता है, बल्कि वनों की बहाली और जलवायु परिवर्तन शमन में भी योगदान दिया जा सकता है। विभिन्न गुणवत्ता वाली भूमि पर इसकें उत्पादन में अंतर देखा गया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि मृदा की गुणवत्ता और प्रबंधन रणनीतियाँ अपनाकर कम गुणवत्ता वाली भूमि पर भी इसका अच्छा उत्पादन किया जा सकता है। अतः सतत वानिकी (sustainable forestry) और वृक्षारोपण वानिकी (plantation forestry) की नीति अपनाकर, खासी पाइन का उत्पादन और उपयोग बढ़ाया जा सकता है, जिससे भारत की बढ़ती लकड़ी की मांग को पूरा किया जा सकें और साथ ही इसकें निर्यात से विदेशी मुद्रा भी अर्जित की जा सकें।

संदर्भः

- अरुणाचलम, ए. (2012). अरुणाचल प्रदेश, उत्तर-पूर्वी भारत में लकड़ी कटाई पर प्रतिबंध का सामाजिक-आर्थिक प्रभाव। *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इकोलॉजी एंड एनवायरनमेंटल साइंसेज*, 38, 119–132. http://www.nieindia.org/Journal/index.php/ijees/article/view/79.
- बंसल, ए. के. (2004). *भारतीय लकड़ी आयात: एक विश्लेषण। इंडियन फॉरेस्टर*, 130(9): 963-976.
- भट्ट, बी.पी., और सिंह, के. (2016). मेघालय की पारंपरिक कृषि-वनीकरण प्रणालियों की उत्पादन क्षमता: एक अध्ययन। *जनवरी 2006.*
- चौधरी, वी., और भट्टाचार्य, ए. (2002). शिलांग, मेघालय में *पाइनस केसिया* वृक्ष-वृत्त विश्लेषण के लिए उपयुक्तता। *करेंट साइंस*, 83(8), 1010–1015.
- देव, आई., राम, ए., भास्कर, एस., और चतुर्वेदी, ओ.पी. (2018). वर्तमान परिदृश्य में कृषि-वनीकरण की भूमिका। *कृषि-वनीकरण: जलवायु अनुकूलता और ग्रामीण आजीविका*, दिसंबर, 1–10.
- ध्यानी, एस.के., और चौहान, डी.एस. (1995). उत्तर-पूर्वी भारत में निरंतर उत्पादकता के लिए कृषि-वनीकरण हस्तक्षेप। *जे. रेंज मैनेज एग्रोफोरेस्ट*, 16, 79–85.
- फॉरेस्ट सर्वे ऑफ इंडिया (2019). *फॉरेस्ट सर्वे ऑफ इंडिया*, 2, 173–181.
- हिल्स, के., और उमंगोट, एस. (2014). मेघालय 11.18.1। *ISFR वॉल्यूम II*, 173–181.
- https://dolr.gov.in/wasteland-atlas-of-india/ (2019).
- https://www.timbertradeportal.com/ (n.d.).
- आईसीएफआरई. (2010). *फॉरेस्ट सेक्टर रिपोर्ट इंडिया 2010*, 1–204.
- आईसीएफआरई-आईडब्ल्यूएसटी इंडिया वुड सेक्टर रिपोर्ट (2021). *2(3).*
- अंतर्राष्ट्रीय उष्णकटिबंधीय इमारती लकड़ी संगठन (आईटीटीओ). (2019). द्विवार्षिक समीक्षा और आकलन। http://www.itto.int/news_releases/id=5195.
- कांत, पी., और नौटियाल, आर. (2010). *भारत में लकड़ी की आपूर्ति और मांग 2010-2030.*

- कुमार, ए., मीना, डी., चौधरी, एच., और कुलकर्णी, एन. (2024). मेघालय में खासी पाइन की मात्रा का अनुमान। *वन और पर्यावरण, मेघालय एवं ICFRE*.
- मेघालय जैव-विविधताबोर्ड. (2017). *मेघालय राज्य जैव-विविधतारणनीति और कार्य योजना*.
- मोनोहरन, टी. (2012). *भारत में लकड़ी व्यापार के आपूर्ति निर्धारक*.
- मुगांगा, एस.पी., और वान वीक, जी. (2003). रवांडा के वनीकरण में विदेशी सॉफ्टवुड वृक्ष प्रजातियों की उत्पादन क्षमता में आनुवंशिक सुधार की संभावना। *सदर्न अफ्रीकन फॉरेस्ट्री जर्नल*, 1999 (1), 65–75.
- NABARD 2023-24 (n.d.). *संभावित लिंक्ड क्रेडिट प्लान.*
- राकाबंडेरा, सी.एम. (2024). *लकड़ी उत्पादन: वृक्ष उत्पादकों के लिए एक अवसर। स्मारिका: वृक्ष उत्पादकों का मेंला*, 20–26.
- साहनी, के.सी. (1990). *भारत और आस-पास के देशों के जिम्नोस्पर्म*.
- तिवारी, बी.के., और कुमार, सी. (2008). *मेघालय के वन उत्पाद: वर्तमान स्थिति और भविष्य की संभावनाएं*.

****

माइक्रो और नैनोप्लास्टिक्स के पर्यावरण और पारिस्थितिकी तंत्र पर प्रभाव का समीक्षात्मक अध्ययन

सोनकेश्वर शर्मा
भा.वा.अ.शि.प.- वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट

प्लास्टिक प्रदूषण आज के समय में एक गंभीर पर्यावरणीय चुनौती बन चुका है, जिसका प्रभाव पारिस्थितिकी तंत्र और मानव स्वास्थ्य पर गहरा पड़ रहा है। आर्थिक सहयोग और विकास संगठन (OECD) की 2022 की रिपोर्ट के अनुसार, पिछले कुछ दशकों में प्लास्टिक उत्पादन और खपत में तीव्र वृद्धि हुई है, जिससे पर्यावरण में प्लास्टिक कचरे का व्यापक प्रसार हुआ है। रिपोर्ट के अनुसार, उभरती अर्थव्यवस्थाओं के विस्तार के कारण पिछले तीन दशकों में प्लास्टिक की खपत चार गुना बढ़ी है, और 2000 से 2019 के बीच वैश्विक प्लास्टिक उत्पादन दोगुना होकर 460 मिलियन टन तक पहुंच गया है। इस अवधि के दौरान, 353 मिलियन टन प्लास्टिक कचरा उत्पन्न हुआ, जो प्लास्टिक उत्पादन के समान दर है। प्लास्टिक प्रदूषण के विभिन्न प्रकारों में, माइक्रोप्लास्टिक्स (MPs) और नैनोप्लास्टिक्स (NPs) विशेष रूप से चिंता का विषय बने हुए हैं। माइक्रोप्लास्टिक्स का आकार 01 माइक्रोमीटर (µm) से 05 मिलीमीटर (mm) के बीच होता है, जबकि नैनोप्लास्टिक्स इससे भी छोटे होते हैं, जिनका व्यास 1 µm से कम होता है। ये कण प्लास्टिक के भौतिक और भौतिक-रासायनिक विखंडन प्रक्रियाओं से उत्पन्न होते हैं। पर्यावरण में उपस्थित प्लास्टिक से उत्पन्न MNPs (माइक्रो और नैनोप्लास्टिक्स) खतरनाक उभरते प्रदूषक हैं, जो पर्यावरण, जीव-जंतु और मानव स्वास्थ्य के लिए संभावित खतरे पैदा करते हैं। सामान्यत: प्लास्टिक कण विभिन्न स्रोतों से उत्पन्न हो सकते हैं और जिन्हें दो प्रमुख समूहों में वर्गीकृत किया जा सकता है: (i) प्राथमिक और (ii) द्वितीयक। प्राथमिक MPs का उत्पादन जानबूझकर माइक्रो-स्केल पर विभिन्न उत्पादों में उपयोग के लिए किया जाता है, जैसे कि व्यक्तिगत देखभाल उत्पादों में माइक्रो-बीड्स या औद्योगिक घर्षण से उत्पन्न कण। द्वितीयक MPs बड़े प्लास्टिक वस्तुओं, जैसे बोतलें, बैग और मछली पकड़ने के उपकरणों के विखंडन और टूटने से उत्पन्न होते हैं, जिन्हें समय के साथ पर्यावरणीय शक्तियों जैसे UV विकिरण, तरंग क्रिया और यांत्रिक घर्षण द्वारा टूटकर छोटे कणों में बदल दिया जाता है। ये MPs छोटे नैनोप्लास्टिक्स में विखंडित होते हैं और सीधे पर्यावरण में आ जाते हैं, अथवा बड़े प्लास्टिक कणों के और अधिक विघटन से उत्पन्न हो सकते हैं। वैज्ञानिक समुदाय पारंपरिक रूप से NPs को MPs के एक उपसमूह के रूप में मानता रहा है, क्योंकि उनकी संरचना और उत्पत्ति समान होती है। हालांकि, छोटे आकार के कारण, NPs की कुछ भिन्न विशेषताएं भी होती हैं। पर्यावरण में MNPs की व्यापक उपस्थिति अब वैश्विक वैज्ञानिक समुदाय द्वारा मान्य की जा चुकी है। शोधों में उनके विभिन्न पारिस्थितिक तंत्रों, जैसे महासागरों, नदियों, झीलों, मृदा, और यहां तक कि वायुमंडल में भी मौजूद होने का पता चला है। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्लास्टिक प्रदूषण एक वैश्विक मुद्दा बन चुका है, जिसका प्रभाव दूरगामी हो सकता है। MNPs पर्यावरणीय प्रदूषकों के रूप में एक गंभीर चुनौती बनकर उभरे हैं। ये कण अत्यंत छोटे होते हैं और इनका फैलाव और उपस्थिति विश्व के दूरस्थ क्षेत्रों, जैसे आर्कटिक और अंटार्कटिका में भी देखी गई है। MNPs का छोटा आकार और उच्च सतह क्षेत्र-से-आयतन अनुपात उन्हें प्राकृतिक वातावरण में सक्रिय व्यवहार करने की क्षमता देता है। ये कण हवा और पानी की धाराओं के साथ लंबी दूरी तक पहुँच सकते हैं, जिसकें परिणामस्वरूप ये दूरस्थ और स्वच्छ क्षेत्रों में भी जमा हो जाते हैं। ये कण

अत्यधिक स्थायी प्रदूषक होते हैं जो दशकों या शताब्दियों तक पर्यावरण में बने रह सकते हैं क्योंकि इनमें अपघटन की प्रक्रिया बहुत धीमी होती है, विशेष रूप से गहरे महासागर की ठंडी और ऑक्सीजन रहित परिस्थितियों में। वैज्ञानिक समुदाय में MNPs के प्रभावों को लेकर चिंता, खासकर जलीय और स्थलीय पर्यावरण और संभावित मानव स्वास्थ्य जोखिमों पर बढ़ती जा रही है। समुद्री पारिस्थितिक तंत्र विशेष रूप से इन कणों के प्रति संवेदनशील होते हैं। शोध में पाया गया है कि MNPs को प्लवक, मछली, समुद्री पक्षी, और समुद्री स्तनधारी जैसे कई समुद्री जीव निगल लेते हैं। इन कणों के सेवन से शारीरिक नुकसान, भोजन लेने की दक्षता में कमी, व्यवहार में परिवर्तन और प्रजनन और जीवित रहने पर प्रभाव पड़ता है। इसकें अतिरिक्त, ये कण फैटी एसिड और अमीनो एसिड चयापचय से संबंधित विकारों का कारण बन सकते हैं और जहरीले रसायनों के वाहक के रूप में काम कर सकते हैं, जिससे समुद्री जीवन को अतिरिक्त जोखिम होता है और खाद्य श्रृंखला भी बाधित हो सकती है। MNPs के प्रभाव हाल के वर्षों में, समुद्री पारिस्थितिक तंत्र से आगे बढ़कर स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र में भी पाये गए हैं। मृदा, जो कार्बन का एक प्रमुख भंडार और स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र का एक महत्त्वपूर्ण घटक है, विशेष चिंता का विषय बन रही है। MNPs विभिन्न मार्गों से मृदा में प्रवेश कर सकते हैं, जैसे कि कृषि में प्लास्टिक-युक्त मल्च का उपयोग। हालाँकि, इन कणों के मृदा के कार्बन और संबंधित जीवों के साथ अंतःक्रिया को समझने के प्रयास अभी प्रारंभिक चरण में हैं, फिर भी चिंता है कि ये कण मृदा के स्वास्थ्य, पोषक तत्व चक्र और पौधों की वृद्धि को प्रभावित कर सकते हैं। इन पारिस्थितिकीय प्रभावों के अलावा, मानव स्वास्थ्य पर भी MNPs के संभावित खतरों के प्रति जागरूकता बढ़ रही है। ये कण भोजन के सेवन, साँस लेने, और त्वचा के संपर्क से मानव शरीर में प्रवेश कर सकते हैं और संभावित स्वास्थ्य जोखिम पैदा कर सकते हैं। हालाँकि, इनके प्रत्यक्ष स्वास्थ्य प्रभावों पर शोध चल रहा है, लेकिन इस बात की चिंता है कि प्लास्टिक कण शरीर में रासायनिक संदूषकों को ले जा सकते हैं और सूजन प्रतिक्रियाएं उत्पन्न कर सकते हैं। MNPs व्यापक प्रदूषक बनकर उभरे हैं, जो पर्यावरणीय पारिस्थितिकी को गंभीर खतरे में डालते हैं। उनका छोटा आकार, स्थायित्व और जैव-परस्पर क्रिया की क्षमता उन्हें एक जटिल और दुर्जेय पर्यावरणीय चुनौती बनाते हैं। MNP प्रदूषण की इस बहुआयामी समस्या का समाधान एक व्यापक और अंतरविषयी दृष्टिकोण की आवश्यकता है। इसमें वैज्ञानिकों, नीति-निर्माताओं, औद्योगिक क्षेत्रों, और जनता के समन्वित प्रयासों की आवश्यकता है ताकि प्रभावी शमन रणनीतियाँ और सुदृढ़ नीतिगत ढाँचे बनाए जा सकें। इस लेख का प्रमुख उद्देश्य MNPs के स्थलीय से जलीय पारिस्थितिक तंत्र में स्थानांतरण को कम करना है, जिससे संभावित पारिस्थितिक, जलवायु, और मानव स्वास्थ्य जोखिमों को कम किया जा सकें। यह प्रयास न केवल जैव-विविधताके संरक्षण के लिए महत्त्वपूर्ण है बल्कि भविष्य में मानव स्वास्थ्य और जलवायु स्थिरता की रक्षा के लिए भी आवश्यक है।

माइक्रो और नैनोप्लास्टिक्स के प्रदूषण को कम के प्रभावी उपाय

MNPs प्रदूषण को कम करने के लिए एक व्यापक दृष्टिकोण की आवश्यकता है जो इन कणों के स्रोतों और उनके पर्यावरण में अस्तित्व को संबोधित कर सकें। एकल-उपयोग वाले प्लास्टिक पर प्रतिबंध या सीमाएँ लागू करना और पर्यावरण के अनुकूल विकल्पों को बढ़ावा देना MNPs के स्रोत पर उत्पादन को कम करने में मदद कर सकता है। कई देशों ने एकल-उपयोग वाले प्लास्टिक के उत्पादन पर प्रतिबंध लगाया है, यूरोप ने 2021 में और भारत ने 2022 में इसे प्रतिबंधित किया है। प्लास्टिक कचरे का सही ढंग से रखरखाव और पुनर्चक्रण बहुत महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है जिससे प्लास्टिक कणों को पर्यावरण में प्रवेश से रोका जा सकें। उत्पादकों को उत्पादों के अंत-जीवन प्रबंधन की जिम्मेदारी देने से पर्यावरण अनुकूल और पुनर्नवीनीकरण योग्य प्लास्टिक का विकास प्रोत्साहित हो

सकता है। अपशिष्ट जल उपचार संयंत्रों को अपग्रेड किया जाना चाहिए जिससे MP युक्त जल को पर्यावरण में छोड़ने से पहले माइक्रोप्लास्टिक को हटाया जा सकें। यह भी सुनिश्चित करना आवश्यक है कि ये कण नदियों और महासागरों में न जाएं। प्लास्टिक के उत्पादन में पर्यावरण के अनुकूल रसायनों और सामग्री के उपयोग को बढ़ावा देना हानिकारक योजक और विघटन उत्पादों के रिलीज को कम कर सकता है। MNPs प्रदूषण के बारे में जागरूकता बढ़ाना और प्लास्टिक उपयोग को हतोत्साहित करना प्लास्टिक कचरा कम कर सकता है। MNPs प्रदूषण के स्रोतों, प्रवृत्तियों, और पारिस्थितिकीय प्रभावों पर निरंतर अनुसंधान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है ताकि प्रभावी शमन रणनीतियाँ विकसित की जा सकें। डिटेक्शन विधियों और निगरानी कार्यक्रमों का मानकीकरण वैश्विक प्लास्टिक प्रदूषण के आकलन को सुगम बना सकता है। नवीन सामग्रियों और तकनीकों का विकास, जैसे कि बायोडिग्रेडेबल प्लास्टिक्स और अपशिष्ट जल उपचार के लिए फ़िल्ट्रेशन सिस्टम, MNPs प्रदूषण को कम करने में योगदान कर सकता है। MNPs की व्यापक उपस्थिति विभिन्न पारिस्थितिक तंत्रों में, जैसे महासागर, नदियाँ, मृदा, और वातावरण, इस बात पर जोर देती है कि ये एक महत्त्वपूर्ण पर्यावरणीय प्रदूषक हो सकते हैं। इन छोटे प्लास्टिक कणों की पारिस्थितिक तंत्रों को बाधित करने, समुद्री जीवन को प्रभावित करने, और खाद्य श्रृंखला में प्रवेश करने की क्षमता गंभीर चिंताओं को जन्म देती है। इस उभरते प्लास्टिक प्रदूषण की स्थिति अभी भी प्रारंभिक चरण में है और इसे अनुसंधान की आवश्यकता है। MNPs की विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से दक्षता और प्रभावशीलता की जांच की जानी चाहिए ताकि परिणामों की गुणवत्ता, विश्वसनीयता और सटीकता में वृद्धि हो सकें। यह डेटा-विश्लेषण, डेटा साझाकरण को प्रोत्साहित करेगा और मजबूत नीतिगत ढांचे में मदद करेगा, जिससे युवा शोधकर्ताओं, नीति-निर्माताओं, और हितधारकों को विभिन्न स्रोतों और पारिस्थितिकीय क्षेत्रों से परिणामों की व्याख्या करने में सहायता मिलेगी। पर्यावरण की सुरक्षा के लिए, व्यापक नियम, नवाचार तकनीकें, और सार्वजनिक जागरूकता प्लास्टिक प्रदूषण से निपटने और हमारे पारिस्थितिक तंत्र के नाजुक संतुलन को बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण हैं। इस लेख में प्रस्तुत साक्ष्य MNP प्रदूषण को संबोधित करने के लिए तत्काल कार्रवाई की आवश्यकता को रेखांकित करता है। इसलिए, सरकारों, उद्योगों, शोधकर्ताओं, और व्यक्तियों को प्रभावी नीतियों को विकसित करने और व्यावहारिक इंजीनियरिंग समाधान के लिए अनुसंधान और विकास को उन्नत करने के लिए सहयोग करना चाहिए। नीति-निर्माताओं को राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर नियमों और नीतियों को समन्वित करने की दिशा में काम करना चाहिए ताकि पर्यावरण में MNPs प्रदूषण को प्रभावी ढंग से संबोधित किया जा सकें। प्लास्टिक उत्पादन में पर्यावरण के अनुकूल रसायन प्रथाओं को अपनाने से हानिकारक प्लास्टिक योजक और MP कणों का निर्माण कम हो सकता है। इन अनुसंधान अंतरालों को संबोधित करके और साक्ष्य-आधारित नीति सिफारिशों को लागू करके, हम एक अधिक सतत और प्लास्टिक-रहित भविष्य की ओर काम कर सकते हैं, जिससे MNPs प्रदूषण के पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव को कम किया जा सकें।

****

बोडोलैंड प्रादेशिक क्षेत्र, असम से साल (*Shorea robusta*) पर ग्रोट टुसोक मोथ, (*Calliteara grotei*) के प्रकोप पर एक वैज्ञानिक लेख

प्रसून कर्माकर, अक्षय मिश्रा, अरबिंदा डेका, बिनंदा कुमार रजक और बिजुमोनी कलिता दत्ता
भा.वा.अ.शि.प.- वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट

अमूर्त

यह लेख बोडोलैंड टेरिटोरेल क्षेत्र, असम से साल (*Shorea robusta*) पर ग्रोट टुसोक मोथ (*Calliteara grotei*) के प्रकोप पर पहला वैज्ञानिक लेख है। *C. grotei* ने कोकराझार जिले के मागुरमारी संरक्षित रिजर्व वन, एलाशीझार रिजर्व वन, नायेकगांव संरक्षित रिजर्व वन के चोराईखोला क्षेत्र, परौरा रिजर्व वन के परौरा और कोराईटोला क्षेत्र और कोकराझार के हरिनगुरी-I क्षेत्र में साल पेड़ों को प्रभावित किया है। *C. grotei* कीट ने साल के पेड़ों के पत्तों को इस प्रकार खाया, जिससे केवल केंद्रीय मध्य शिराएं और रेचिस बचीं रही। लार्वा की अवधि 35 से 40 दिनों तक थी, जिसमें पांच लार्वा इंस्टार थे। प्रारंभिक इंस्टार लार्वा का सिर और वक्ष नारंगी रंग का होता है और पेट के ऊपरी भाग पर विशिष्ट काली धारियां होती हैं। अंतिम इंस्टार लार्वा धीरे-धीरे पीले रंग का हो जाता है और पहले और दूसरे उदर खंड के ऊपरी भाग के बीच एक काला निसान नजर आता है। अंत में लार्वा का शरीर लंबे पीले बालों से ढक जाता है और पहले से चौथे और आठवें उदर खंड के ऊपरी भाग से बालों के घने गुच्छे निकलते हैं।

मुख्य शब्द: साल, ग्रोट टुसोक मोथ, लार्वा, इंस्टार

साल (*Shorea robusta*) असम के बोडोलैंड प्रादेशिक क्षेत्र में उगाई जाने वाली एक व्यावसायिक रूप से महत्त्वपूर्ण, अर्ध-सदाबहार वन लकड़ी के पेड़ की प्रजाति है। साल भारत में हार्डवुड लकड़ी का एक उत्कृष्ट स्रोत है और विशेष रूप से दरवाजे और खिड़कियों के फ्रेम बनाने के लिए उपयुक्त किये जाते हैं। साल की सूखी पत्तियों का उपयोग थाली और कटोरे बनाने के लिए किये जाते हैं जिन्हें “पत्रावली” भी कहा जाता है। हालांकि, विभिन्न कीटों और बीमारियों के प्रति साल के संवेदनशीलता इसकी कम उत्पादकता का कारण है [1]।

जनवरी 2023 में, असम के बोडोलैंड प्रादेशिक क्षेत्र के कोकराझार जिले के मागुरमारी संरक्षित रिजर्व वन, इलाशीझार रिजर्व वन और नायकगांव संरक्षित रिजर्व वन के साल जंगलों में ग्रोट टुसोक मोथ (*C. grotei*) के लार्वा द्वारा बड़े पैमाने पर पत्तियों का खाना देखा गया। उसी वर्ष, कोकराझार जिले के कॉपीस (coppice) साल बागानों में भी कीटों का प्रकोप देखा गया। बड़े पैमाने पर पत्तियों के डिफोलियेट (कीट द्वारा पत्तियों का खाना) होने के कारण साल के वृक्षों की वार्षिक वृद्धि दर (annual rate of increase) गंभीर रूप से प्रभावित हुई। साल के आर्थिक महत्त्व को ध्यान में रखते हुए, बोडोलैंड प्रादेशिक क्षेत्र, असम में कॉपीस साल बागानों और साल जंगलों पर *C. grotei* को नियंत्रण करने के लिए आई.सी.एफ.आर.ई.- वर्षा वन अनुसंधान संस्थान द्वारा पर्यावरण के अनुकूल प्रबंधन योजना बनाने के लिए एक अनुसंधान परियोजना चलायी जा रही है। भारत में *C. grotei*, की विशेषताओं और होस्ट पौधों जैसे कि *Berberis* sp., *Eucalyptus* sp., *Lagerstroemia speciosa*, *Mallotus philippinensis*, *Moullava spicata*, *Psidium guajava*, *Quercus leucotrichophora*, *Syzygium aqueum*, *Tectona grandis*, *Terminalia crenulata* और *Vachellia nilotica* पर पूर्व वैज्ञानिक रिपोर्ट

उपलब्ध हैं [2,3,4,5]। हालांकि, भारत से *S. robusta* पर *C. grotei* के जीव विज्ञान और क्षति की प्रकृति पर कोई वैज्ञानिक रिपोर्ट उपलब्ध नहीं है। इसलिए, यह लेख भारत के बोडोलैंड प्रादेशिक क्षेत्र में *S. robusta* पर *C. grotei* की जीवविज्ञान और साल के पेड़ों पर इसकी क्षति प्रकृति के संबंध में किए गए अवलोकनों को एक नई रिपोर्ट के रूप में वर्णन करता है।

भारत के असम के बोडोलैंड प्रादेशिक क्षेत्र में कोकराझार जिले के मागुरमारी संरक्षित रिजर्व वन, इलाशीझार रिजर्व वन, नायकगांव संरक्षित रिजर्व वन के चोराइखोला क्षेत्र, परौरा और कोराईटोला, परौरा संरक्षित रिजर्व वन और हरिनागुरी-I में सर्वेक्षण किए गए ताकि *C. grotei* द्वारा *S. robusta* पर हुई क्षति की प्रकोप और प्रकृति का निर्धारण किया जा सकें। *C. grotei* लार्वा को *S. robusta* पेड़ों से एकत्र किया गया और मानक टैक्सोनोमिक कुंजियों और ट्राइब *Orgyiini* के जीनस *Calliteara* पर प्रकाशित साहित्य का उपयोग करके बाह्य रूपात्मक विशेषताओं के आधार पर पहचाना गया [6,7]।

क्षेत्र से एकत्रित *C. grotei* लार्वा के समूह को *S. robusta* की ताजा पत्तियों पर कांच के जार (15 सेमी व्यास और 20 सेमी गहराई) में कई पीढ़ियों तक 27 ± 2 डिग्री सेल्सियस तापमान, 70 ± 5% सापेक्ष आर्द्रता और 16 घंटे (रौशनी): 8 घंटे (अँधेरा) दीप्तिकाल पर रखा गया। मादा *C. grotei* वयस्कों ने *S. robusta* की पत्तियों पर 2-3 बैचों में 30-120 क्रीमिश-ब्राउन रंग के अंडे दिए (चित्र 1)। *C. grotei* के समान कोहोर्ट या आयु के अंडों का उपयोग सजातीय कल्चर प्राप्त करने के लिए किया था। इन्क्यूबेशन (incubation) अवधि 7 से लेकर 9 दिनों तक होती है और कुल लार्वा अवधि 35 से 40 दिनों तक होती है जिसमें पांच लार्वा इंस्टार होते हैं। अंतिम इंस्टार लार्वा धीरे-धीरे पहले और दूसरे उदर खंडों के पृष्ठ भाग के बीच एक स्पष्ट काले निशान के साथ पीले रंग में बदल जाता है। लार्वा का शरीर लंबे पीले बालों और 1-4 और 8 वें उदर खंडों के ऊपरी भाग से निकले बालों के मोटे गुच्छे से ढका होता है (चित्र 1)। लार्वा पेड़ों की छाल की दरारों पर या पत्तियों से चिपक के रेशमी कोकून में प्यूपा बनाता है। प्यूपा अवधि 9 से 14 दिनों तक होती है। *S. robusta* पर *C. grotei* मादा मोथ की ओविपोजिशन (अंडे देने की अवधि) अवधि और आयु क्रमशः 4 से 6 दिन और 6 से 9 दिन तक होती है। *C. grotei* मादा पतंगों में अनियमित गहरे भूरे रंग की लहरदार लाइनों के साथ ग्रे सफेद अग्रभाग होते हैं। हिंडविंग (पिछला पंख) रंग में क्रीमिश-सफेद होता हैं (चित्र 1)। एक वर्ष में दो से तीन अतिव्यापी (overlapping) पीढ़ियाँ होती हैं। सर्दियों (दिसम्बर से जनवरी) में दिए गए *C. grotei* के अण्डों ने मार्च में नए पतंगों को उत्पन्न किया।

C. grotei साल पेड़ों को पूरी तरह से डिफोलियेट कर, केवल केंद्रीय मध्य शिरा और रेचिस को छोड़ देते हैं। सौ से अधिक कैटरपिलर साल पेड़ों की पत्तियों को झुंड में खाते है। भूरे रंग के लार्वा मल पत्ते रहित साल पेड़ों के निचे जमा हो जाते है। लार्वा के झुंड प्रभावित साल पेड़ों से निचे उतरते हैं और पत्तियों को खाने के बाद आसपास के अप्रभावित पेड़ों पर रेंगने लगते है। *C. grotei* ने 23 से 30 सेमी की परिधि वाले पाँच साल पुराने साल के बागानों को आक्रमण किया। *C. grotei* संक्रमण की गंभीरता को देखते हुए, यह कीट बोडोलैंड प्रादेशिक क्षेत्र, असम और पड़ोसी राज्य पश्चिम बंगाल में साल उगाने वाले क्षेत्रों के लिए संभावित खतरा बन सकता है। साल की खेती वाले क्षेत्रों में *C. grotei* की जनसंख्या गतिशीलता का अध्ययन करने के लिए एक दीर्घकालिक क्षेत्र अध्ययन की आवश्यकता है। पर्यावरण अनुकूल प्रबंधन उपायों पर अनुसंधान करके साल पर *C. grotei* की आबादी को नियंत्रण में लाया जा सकता है।

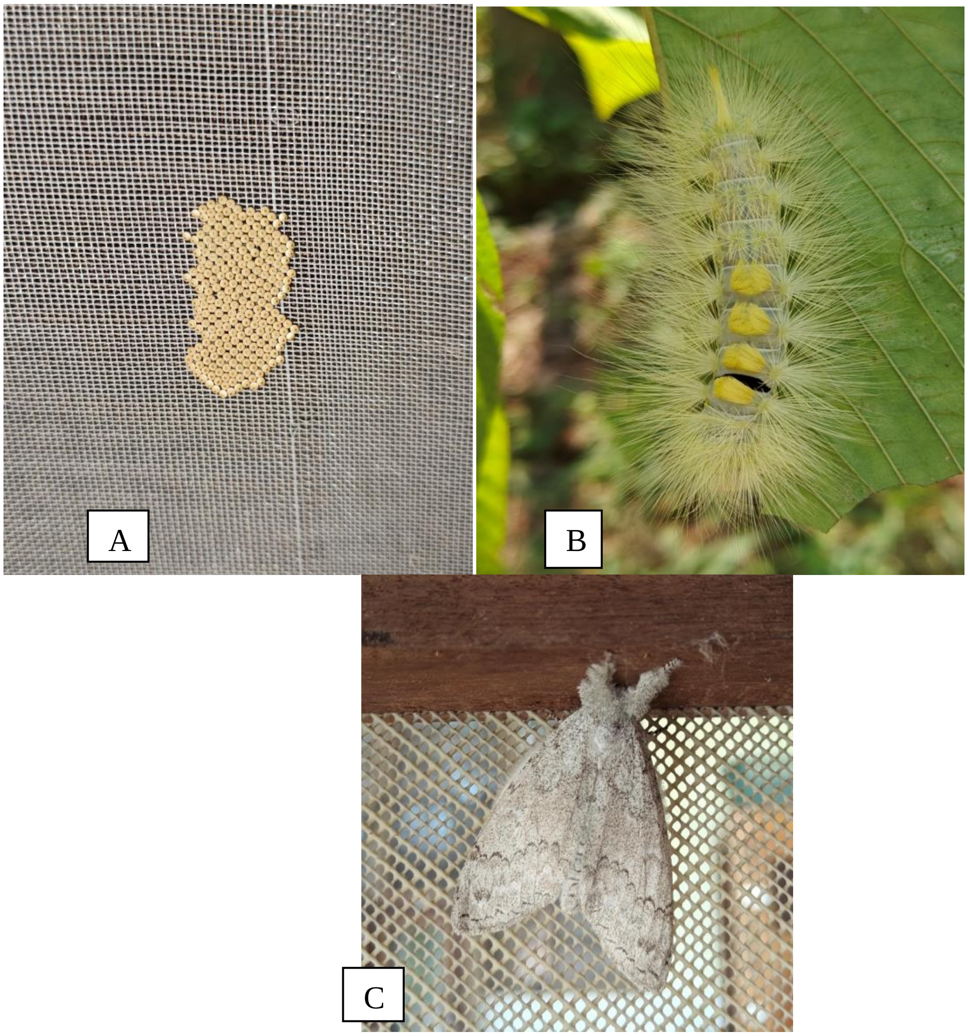

चित्र 1: *C. grotei* के अंडे (A), लार्वा (B) मादा पतंगे (C)

संदर्भ

1. कुलकर्णी एन., एवं चंदर एस. (2022). *Hoplocerambyx spinicornis* न्यूमैन: साल, *Shorea robusta* का प्रमुख हार्टवुड बोरर और भारत में इसका प्रबंधन। इन: सुंदरराज आर (एड) वुड डिग्रेडेशन का विज्ञान और उसका संरक्षण। स्प्रिंगर, सिंगापुर, पृ. 289-328.
2. अर्जुन जी.एस. (2013). उत्तर महाराष्ट्र भारत से लेपिडोप्टेरा हेटेरोसेरा पतंगों का वर्गीकरण संबंधी अध्ययन। पीएचडी थीसिस। सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे.
3. बीसन सी.एफ.सी. (1941). भारत और पड़ोसी देशों के वन कीटों की पारिस्थितिकी और नियंत्रण। असवंत सिंह, वसंत प्रेस, देहरादून.
4. रॉयचौधरी एन, चंद्रा एस, सिंह आर.बी, बर्वे एस.के, एवं दास ए.के (2015). यूकेलिप्टस के पौधों पर कीटों का नया रिकॉर्ड। *इंडियन जर्नल ऑफ फॉरेस्ट्री* 38:117-124.

5. सिंह ए.पी. (2021). उत्तराखंड में पश्चिमी हिमालयी ओक के कीट। वन अनुसंधान संस्थान, भारतीय वानिकी अनुसंधान और शिक्षा परिषद्, देहरादून.
6. बाली, कौर जी.पी., कालेका ए.एस., एवं सिंह डी. (2021). भारत से दो नए रिकॉर्ड के साथ जीनस कैलिटेरा बटलर (लेपिडोप्टेरा: एरेबिडे: लाइमंट्रिनाई) की नौ प्रजातियों पर टैक्सोनोमिक अध्ययन। *जर्नल ऑफ बॉम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटी*। 118:105-124.
7. हैम्पसन जी.एफ. (1892). सीलोन और बर्मा सहित ब्रिटिश भारत के जीव: पतंगे। टेलर एंड फ्रांसिस, लंदन.

****

मृदा और जल संरक्षण में पूर्वोत्तर भारत की पारंपरिक खेती की भूमिका

किंगशुक मोदक
भा.वा.अ.शि.प - वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट

प्रस्तावना

पूर्वोत्तर भारत (एनईआई) की पहाड़ियाँ अनादिकाल से कई स्वदेशी समुदायों के लिए पारंपरिक रीति-रिवाजों और प्रथाओं के भंडार हैं। इस क्षेत्र में अधिकांश वन समुदाय के स्वामित्व वाले हैं। भारत के पूर्वोत्तर राज्यों में लगभग 200 जनजातीय समुदाय पारंपरिक खेती के विभिन्न रूपों का अभ्यास कर रहे हैं। शिफ्टिंग खेती (झूम) एनईआई में सबसे आदिम और पारंपरिक खेती तकनीक है। पारंपरिक झूम प्राकृतिक वन में स्लैश और बर्न तकनीक द्वारा किया जाता है, इसकें बाद फसल की बुवाई, अंतर-सांस्कृतिक संचालन और कटाई और वनस्पति पुनर्जनन के लिए भूमि को छोड़ दिया जाता है। इन खेती तकनीकों को कार्बनिक खेती कहा जा सकता है क्योंकि इसमें सिंथेटिक उर्वरकों और कीटनाशकों का अनुप्रयोग शामिल नहीं है। इसलिए, पारंपरिक झूम सदियों से प्रचलित है क्योंकि यह खाद्य सुरक्षा के साथ आर्थिक वापसी लाता है और स्वस्थ मृदा को भी बनाए रखता है।

बढ़ती आबादी के साथ खाद्य की बढ़ती मांग ने स्वस्थ झूम चक्र को 10-15 वर्ष से घटाकर 5 वर्ष या कुछ स्थानों पर भी कम कर दिया। इस प्रथा की व्यापक रूप से इसकें अवैज्ञानिक रूप के लिए आलोचना की जाती है जिससे वनस्पति, मृदा का भारी नुकसान होता है और भूमि-क्षरण और पारिस्थितिक तंत्र की नाजुकता में तेजी आती है। इस क्षेत्र में भूमि अधिकारों के कारण सरकार के लिए झूम को रोकने के लिए सीधे हस्तक्षेप करना भी कठिन है। किसानों को प्रोत्साहन प्रदान करके झूम को नियंत्रित करने के लिए राज्य पंचवर्षीय योजना (1975-80) के तहत मृदा संरक्षण योजनाओं को लागू किया गया था। किसानों को मुफ्त में खेती करने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए सीढ़ीदार भूमि (चावल की खेती और फलों की फसलों को बढ़ावा देने के लिए) और सिंचाई सुविधाएं प्रदान की गईं। लेकिन यह योजना अपनी कठोरता के कारण विफल रही जिसने झूमिया को अपने सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन में इसे अपनाने के लिए हतोत्साहित किया। वर्तमान परिदृश्य के तहत, सरकार को झूम को खत्म करने के बजाय, इसे संशोधित करने और आत्मनिर्भर बनाने और अन्य पारंपरिक कृषि प्रणाली पर जोर देने का प्रयास करना चाहिए जो टिकाऊ हैं। इस लेख में, खाद्य सुरक्षा और आजीविका को बनाए रखने के लिए मृदा और जल संरक्षण के लिए पारंपरिक झूम के विकल्प के रूप में पारंपरिक कृषि प्रणालियों की क्षमता का दोहन करने का प्रयास किया गया है।

एल्डर-आधारित झूम खेती

नागालैंड के खोनोमा गांव की अंगामी जनजातियों के बीच एल्डर आधारित झूम (अज) की खेती प्रमुख पारंपरिक खेती है। स्थानीय समुदाय ने सभी प्रकार की आवश्यक फसलों जैसे चावल, बाजरा, आलू, सोयाबीन आदि की खेती एलिनस नेपालेन्सिस के साथ एक इंटरक्रॉप के रूप में की। सीमांत भूमि में बढ़ने की इसकी क्षमता के कारण चंग, चखासांग, कोन्याक और यमचौंगेर जैसी जनजातियों ने भी खेती को स्थानांतरित करके मृदा के क्षरण को रोकने के लिए इसे अपनाया। स्थायी खाद्य उत्पादन के अलावा, यह संशोधित झूम खेती भी ग्रामीणों को ईंधन, लकड़ी और चारा प्रदान करती है। तेजी से बढ़ते नाइट्रोजन फिक्सिंग पेड़ होने के कारण, अल्नस को झूम

भूमि के कायाकल्प के लिए कम समय की आवश्यकता होती है। अध्ययनों से पता चला है कि झूम भूमि के एल्नस और व्यवस्थित प्रबंधन को शामिल किया गया है, पोषक तत्वों की जैव उपलब्धता में सुधार और जलने के बाद भी मृदा सीक्वेस्ट्रेशन में वृद्धि हुई है।

झूम और बंन फार्मिंग

खासी हिल्स में झूम की खेती को 'रिप सिर्टी' भी कहा जाता है। 2-3 वर्षों तक खेती के बाद, आदिवासी समुदाय वनस्पति पुनर्जनन और मृदा की उर्वरता में सुधार की अनुमति देने के लिए भूमि परती छोड़ देते हैं। जैन और खासी पहाड़ियों के जातीय समूहों द्वारा बंन या छत की खेती का अभ्यास किया जाता है। बंन या 'नूर बंन' (स्थानीय खासी भाषा में) खेती का एक प्रकार है जो पारंपरिक रूप से अतिरिक्त पानी को निकालने और पहाड़ी इलाकों में उच्च वर्षा के दौरान मृदा को तरल होने से बचाने के लिए संशोधित किया जाता है। सीमित O_2 पर्यावरण के तहत, संयंत्र बायोमास को चारकोल (बायोचर) में परिवर्तित किया जाता है, जिसे बाद में स्थायी फसल उत्पादन के लिए मृदा की उर्वरता में सुधार के लिए उगाए गए बेड के साथ मिलाया जाता है। मृदा की अम्लता को कम करने, एसओसी, उपलब्ध एन, पी और के में सुधार करने और O_2 सीमित स्थिति के तहत पोषक तत्वों के अस्थिरता और लीचिंग नुकसान को कम करने के लिए दिखाए गए भूखंडों में जले हुए बायोमास (थांग बन) का निगमन।

नागालैंड में जाबो फार्मिंग सिस्टम

नागालैंड में फेक जिले के किक्रुमा गांव में रहने वाली चखेसांग जनजाति के बीच जाबो खेती प्रणाली का उपयोग किया जाता है। जाबो एक चखेसांग शब्द है जिसका अर्थ अपवाह जल को जब्त करना है। यह स्थायी कृषि प्रणाली सदियों से चल रही है और एक कुशल पानी और मृदा संरक्षण उपायों के साथ कृषि, वानिकी और पशुपालन का संयोजन है। सिंचाई के लिए पानी की अनुपलब्धता और घरेलू उपयोग और पानी की कमी के कारण बारिश के पानी की कमी के कारण, इस क्षेत्र में आदिवासी समुदाय पहाड़ी में पानी भर देते हैं। इस प्रणाली में पहाड़ी की चोटी पर संरक्षित वन, मध्य में जल संचयन तालाब और कम ऊंचाई में पशुधन पालन और धान की खेती शामिल है। निचली ऊंचाई में, धान की खेती छत है जो अच्छी तरह से पुडल की जाती है और एक समान जल वितरण और मृदा के कटाव को रोकने के लिए कॉम्पैक्ट होती है।

अरूणाचल प्रदेश की अपातानी प्रणाली

पानी-खेती के रूप में भी जानी जाने वाली अपातानी प्रणाली एक जल प्रबंधन प्रणाली है जो सिंचाई, मृदा के कटाव की जांच और धान सह मछली संस्कृति के साथ खाद्य सुरक्षा को बनाए रखते हुए जल संसाधनों को संरक्षित करके भूमि, जल और खेती को एकीकृत करती है। अपातानी जनजाति सीमित भूमि संसाधनों के सबसे कुशल उपयोग की धारणा के साथ अरुणाचल प्रदेश के निचले सुबनसिरी जिले में अपातानी पठार में इस पारंपरिक खेती का अभ्यास करती है। इस जातीय समूह के पास प्राकृतिक संसाधनों का अग्रिम और समृद्ध पारंपरिक ज्ञान है जिसे उन्होंने सदियों के अनौपचारिक प्रयोग में हासिल किया है। छोटी धाराओं से पानी को सिंचाई के लिए बाँस और पाइनवुड पाइप के माध्यम से चैनलाइज किया जाता है। यह स्वदेशी कृषि प्रणाली पर्यावरण के अनुकूल है क्योंकि खेती के दौरान कोई सिंथेटिक उर्वरक नहीं लगाया जाता है। भूमि की तैयारी के दौरान गाय के गोबर का उपयोग और चावल के खेत में एजोला और लेमना जैसे नाइट्रोजन फिक्सर को शामिल करना इष्टतम मृदा की उर्वरता बनाए रखता है।

त्रिपुरा में चावल आधारित कृषि प्रणाली

चावल की खेती त्रिपुरा के लोगों के लिए उनकी भोजन की आदत और कृषि-जलवायु स्थिति के कारण खाद्य सुरक्षा की कुंजी है। राज्य में शुद्ध बुआई क्षेत्र का लगभग 95% चावल और चावल आधारित कृषि प्रणालियों के अधीन है। स्थानीय किसानों ने अपनी वरीयता के आधार पर मछली, पशुधन और सब्जियों को शामिल करते हुए कुछ स्वदेशी चावल की खेती प्रणाली विकसित की। यह पारंपरिक प्रणाली उनके ज्ञान, रीति-रिवाजों और कौशल पर आधारित है जिसे उन्होंने पीढ़ी के अनुसार विरासत में प्राप्त किया है और आगे बढ़ाया है। इस प्रणाली में, स्थानीय रूप से उपलब्ध संसाधनों का उपयोग बाहरी इनपुट पर न्यूनतम निर्भरता के साथ कुशलतापूर्वक किया जाता है। यह एकीकृत प्रणाली मृदा और जल संरक्षण उपायों, कुशल खरपतवार प्रबंधन और फसल अवशेषों के उचित निपटान और पुनर्चक्रण के लिए खाद को भी ध्यान में रखती है। बैल ड्रॉन हल का उपयोग करके कम से कम 30-50% स्टबल, फसल अवशेष, खरपतवार और थ्रेशिंग फ्लोर कचरे शामिल किए जाते हैं जो खरपतवार की घटनाओं की जांच करते हैं और चावल के खेतों में उच्च पोषक स्थिति भी बनाए रखते हैं।

निष्कर्ष

• संशोधित झूम और जनजाति विशिष्ट पारंपरिक खेती प्रणाली को पूर्वोत्तर भारत के विभिन्न क्षेत्रों में फसल उत्पादकता, मृदा की उर्वरता को बनाए रखने और भूमि क्षरण की जांच के लिए बदला जाना चाहिए।

• जैविक कृषि दृष्टिकोणों और मृदा और जल संरक्षण उपायों को शामिल करने के साथ वैज्ञानिक हस्तक्षेप के माध्यम से स्वदेशी खेती में सुधार किया जा सकता है।

****

आजीविका संसाधन के रूप में बाँस के अंकुर और पूर्वोत्तर भारत में उनकी रूपात्मक विविधता

मुदांग यम्पी, सोनकेश्वर शर्मा, पंकज गोगोई, परिश्मिता हजारिका
भा.वा.अ.शि.प - वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट

परिचय

बाँस पूर्वोत्तर भारत का "हरा सोना" कहा जाता है, जो पोएसी परिवार और बम्बूसाइडी उप-परिवार से संबंधित है। यह क्षेत्र जैव-विविधता और सांस्कृतिक विविधता में समृद्ध है जो विभिन्न खाद्य बाँस प्रजातियों को आश्रय देता है। बाँस की नई कोमल कोंपल स्थानीय समुदायों के लिए एक महत्त्वपूर्ण और बहुमुखी संसाधन है। खाद्य बाँस प्रजातियों की रूपात्मक विविधता का अध्ययन उनकी उचित पहचान और विभिन्न पर्यावरण के लिए प्रजातियों की अनुकूलनशीलता को समझने के लिए आवश्यक है। रूपात्मक लक्षण जैसे कि अंकुर का आकार, रंग, सतह की बनावट और आवरण पर बालों की उपस्थिति, पहचान के लिए उपयोग किए जाने वाले महत्त्वपूर्ण वर्गीकरण लक्षण होते हैं। बाँस की 50% से अधिक प्रजातियाँ पूर्वोत्तर राज्यों अरुणाचल प्रदेश, असम, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, सिक्किम और त्रिपुरा में पाई जाती हैं। बाँस के कोपलों का वैज्ञानिक रूप से रूपात्मक विश्लेषण और पारंपरिक उपयोगों का अध्ययन करने के लिए असम, अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, मणिपुर और नागालैंड के विभिन्न स्थानों में भारतीय वानिकी अनुसंधान और शिक्षा परिषद् के वर्षा वन अनुसंधान संस्थान द्वारा क्षेत्रीय सर्वेक्षण किया गया। यह लेख आजीविका के लिए खाद्य बाँस की रूपात्मक विविधता और भूमिका पर प्रकाश डालता है।

रूपात्मक विविधता

असम, अरुणाचल प्रदेश, मेघालय और नागालैंड में प्रयोग की जाने वाली खाद्य बाँस की प्रजातियाँ *बम्बुसा टुल्डा, बम्बुसा बम्बुस, बम्बुसा बाल्कोआ, डेंड्रोकलामस हैमिल्टोनाई , मेंलोकाना बैसीफेरा* हैं। अंकुर की ऊंचाई, गूदे और आवरण का रंग, सतह की बनावट और ट्राइकोम की उपस्थिति जैसे रूपात्मक लक्षण अध्ययन में दर्ज किए गए। विभिन्न स्थानों से एकत्र की गई पांच बाँस प्रजातियों के बीच रूपात्मक विविधता देखी गई। रूपात्मक लक्षणों की विविधता ऑरिकल, गूदे के रंग, आवरण के रंग और ट्राइकोम के आधार पर दर्ज की गई (चित्र 1)।

चित्र 1: बाँस की कोपलों में विभिन्न कृषि जलवायु उपक्षेत्र के प्रभाव के कारण रूपात्मक भिन्नताएं। ए) *बम्बुसा टुल्डा* बी) *बम्बुसा बम्बुस* सी) *बम्बुसा बाल्कोआ* डी) *मेंलोकाना बैसीफेरा* ई) *डेंड्रोकैलामस हैमिल्टोनाई*।

सांस्कृतिक महत्त्व

पूर्वोत्तर के मूल निवासी बाँस का उपयोग अनुष्ठानों, त्योहारों, निर्माण, शिल्प और जलाऊ लकड़ी जैसे कई उद्देश्यों के लिए करते हैं। बाँस की युवा और कोमल कोपलें विभिन्न प्रकार के पारंपरिक व्यंजनों में एक प्रमुख घटक के रूप में उनकी संस्कृति में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, जो उनकी समृद्ध और विविध संस्कृति को उजागर करती हैं। इसकें अलावा, विभिन्न जन-जातियों के ताजा अंकुरों से तैयार किण्वित बाँस के अंकुरों के लिए उनके अनूठे नाम हैं, जैसे कि खोरिसा, हिरिंग, एकुंग, हेचा, यूप, मेंसु, सोइबम और सोइदोन जो पूरे क्षेत्र में व्यापक उपयोग का संकेत देते हैं। अपने सांस्कृतिक महत्त्व के अलावा, बाँस के अंकुर महत्त्वपूर्ण जातीय-औषधीय मूल्य रखते हैं, और पूर्वोत्तर में मूल निवासियों के लिए आजीविका का महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। माना जाता है कि बाँस की कोपलों के कई स्वास्थ्य लाभ होते हैं और पारंपरिक चिकित्सा में इसका उपयोग किया जाता है। पूर्वोत्तर भारत की कुछ जातीय जनजातियों ने उच्च रक्तचाप और हृदय संबंधी बीमारियों को नियंत्रित करने के लिए बाँस की टहनियों का उपयोग किया। मधुमक्खी और ततैया के डंक से होने वाले दर्द और खुजली को कम करने के लिए किण्वित बाँस की टहनी का उपयोग किया जाता है। यह स्वास्थ्य लाभ और आय के स्रोत के रूप में बाँस की महत्त्वपूर्ण भूमिका को दर्शाता है।

आर्थिक महत्त्व

भारत का यह क्षेत्र बाँस की विभिन्न प्रजातियों से समृद्ध है, यहाँ बाँस जंगल और घरों का आस पास प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं जिसका उपयोग स्थानीय लोग अपनी जरूरत के आधार पर करते हैं। बाँस के अंकुर ग्रामीण समुदायों के लिए आय का स्थायी स्रोत हैं। जून से सितंबर माह के दौरान, लोग जंगली या खेती किए गए बाँस से ताजा अंकुर इकड्ढा करते हैं और आजीविका कमाने के लिए उन्हें बाजारों में बेचते हैं। ताज़ा अंकुर बेचने के अलावा, वे धूप में सुखाए गए और किण्वित बाँस के अंकुर भी तैयार करते हैं, साथ ही किण्वित अंकुर से अचार भी बनाया जाता है (चित्र 2)। सूखे और किण्वित अंकुरों को उनके अनूठे स्वाद और लंबी शेल्फ लाइफ के लिए अत्यधिक महत्त्व दिया जाता है। इससे बने विभिन्न उत्पाद बाजारो में 100-200 रुपये (150 ग्राम से 500 ग्राम) तक की कीमत पर बेचे जाते हैं, जो ग्रामीण परिवार को आय का एक अच्छा स्रोत प्रदान करते है।

चित्र 2: पारंपरिक बाँस शूट उत्पाद ए) धूप में सुखाया हुआ बी) किण्वित बाँस के अंकुर।

भारतीय वन अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् के वर्षा वन अनुसंधान संस्थान द्वारा खाद्य बाँस की इन पाँच प्रजातियों पर रूपात्मक विविधता और इसकें उपयोग पर किया गया। अध्ययन पूर्वोत्तर राज्यों में इसकें महत्त्व पर प्रकाश

डालता है। अध्ययन यह भी बताता है कि स्थानीय लोगों द्वारा विभिन्न कृषि जलवायु उपक्षेत्र में विभिन्न प्रकार की बाँस की प्रजातियों का उपयोग की जाती है, जिसका अपनी स्थानीय अर्थव्यवस्था में योगदान है।

आभार: लेखक प्रतिपूरक वनरोपण निधि प्रबंधन एवं योजना प्राधिकरण (कंपनशेटरी एफ़ोरेस्टेशन फ़ंड मैनेजमेंट ऐंड प्लानिंग अथॉरिटी, CAMPA), पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय (MoEF&CC), भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् (ICFRE), राष्ट्रीय परियोजना समन्वयक (NPC, AICRP 02) और भा.वा.अ.शि.प.-वर्षा वन अनुसंधान संस्थान (ICFRE-RFRI) के निदेशक का हृदय से आभार व्यक्त करते हैं, जिन्होंने इस शोध कार्य के दौरान वित्तीय सहायता प्रदान कर इस अध्ययन को संभव बनाया।

****

प्राकृतिक उर्वरकों के माध्यम से *फ़ीबी गोलपेरेन्सिस* (*Phoebe goalparensis*) पौधों में पोटेशियम का प्रबंधन

लख्या बरुआ, गुरप्रीत कौर भमरा, काजल गुप्ता, सुमोना चेतिया और राजीब कुमार बोरा
भा.वा.अ.शि.प - वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट

फ़ीबी गोलपरेंसिस (Phoebe goalparensis) असम के महत्त्वपूर्ण स्वदेशी वन वृक्षों में से एक है जिसका व्यापक रूप से लकड़ी के प्रयोजनों के लिए उपयोग किया जाता है। इसे आमतौर पर बोन्सम, निकाही या असम सागुन के नाम से जाना जाता है। यह पूर्वोत्तर भारत की व्यावसायिक रूप से महत्त्वपूर्ण लकड़ी प्रजातियों में से एक है जिसका उपयोग फर्नीचर, ग्रेड- I प्लाईवुड, संगीत वाद्ययंत्र, खेल का सामान और कैबिनेट कार्य के लिए किया जाता है। फ़ीबी गोलपरेंसिस की छाल को पीसकर पानी के साथ मिलाकर त्वचा रोगों या घावों को ठीक करने के लिए उपयोग किया जाता है और यह असम की लापता जनजातियों के बीच एक जड़ी बूटी के रूप में काफी लोकप्रिय है।

भा.वा.अ.शि.प.- वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट, असम (भारत) में *फ़ीबी गोलपेरेन्सिस* पौधों में गंभीर रूप से पोटेशियम की कमी के लक्षण देखे गए। पोटेशियम की कमी के लक्षण सबसे पहले पौधे की निचली पत्तियों पर देखे गए और जैसे-जैसे कमी की गंभीरता बढ़ती गई, वे ऊपर की ओर बढ़ते गए। पोटेशियम की कमी के सबसे आम लक्षणों में से एक पत्ती के किनारे पर पीला झुलसना या परिगलन होना है। पोटेशियम की कमी के गंभीर मामलों में, पत्ती का झुलसा हुआ किनारा गिर सकता है। पत्ती की अक्षीय सतह पर बैंगनी धब्बे भी दिखाई दे सकते हैं। इस अध्ययन के तहत, मृदा की गुणात्मक और मात्रात्मक विशेषताओं का मूल्यांकन किया गया, पोटेशियम डेफिशियेंसी रेटिंग स्केल तैयार किया गया और तदनुसार रोपण का मूल्यांकन किया गया। पोटेशियम की कमी को कम करने में उनकी प्रभावशीलता की तुलना करने के लिए पांच उपचारों में केले के छिलके के फॉर्मूलेशन और नियंत्रण के साथ रासायनिक उर्वरक शामिल हैं, जैसे T1 (म्यूरेट ऑफ पोटाश), T2 (केले के छिलके का पाउडर), T3 (केले के छिलके का घोल), T4 (केले के छिलके की राख) एवं T5 नियंत्रण उपचार (Control treatment with water) I

***फ़ीबी गोलपेरेन्सिस* की पत्तियों में पोटेशियम की कमी के लक्षण**

T4 के अंकुरों में सबसे कम कमी रेटिंग (1.00), उसकें बाद T1 (1.53), T3 (2.20), T2 (2.53) और अंत में नियंत्रण (3.13) में दिखाई दी। पोटेशियम डेफिशियेंसी की कमी के आंकड़ों से पता चला है कि म्यूरेट ऑफ पोटाश (T1) से उपचारित पौधों में अधिकतम 2.67, इसकें बाद केले के छिलके की राख (T4) से उपचारित पौधों में 2.53, केले के छिलके के पाउडर (T2) से उपचारित पौधों में 2.47 और केले के छिलके के घोल (T3) से उपचारित पौधों में 2.00 की कमी देखी गई। पोटेशियम डेफिशियेंसी की गंभीरता में सबसे कम सुधार नियंत्रण पौध (1.07 रेटिंग) में देखा गया। उपचार T4 में जड़ की लंबाई सबसे अधिक (16.37 cm), शूट का ताजा वजन (9.95 g), जड़ का ताजा वजन (3.03 g), शूट का सूखा वजन (5.93 g) और जड़ का सूखा वजन (1.87 g) पाया गया।

***फ़ीबी गोलपैरेंसिस* के लिए पोटेशियम डेफिशियेंसी रेटिंग स्केल**

रेटिंग	विवरण
0	कोई लक्षण नहीं, स्वस्थ पत्ता
1	1% पत्ती क्षेत्र का आघात
3	1.1 – 10% पत्ती क्षेत्र का आघात
5	10.1 – 25% पत्ती क्षेत्र आघात और कोई पत्ती झड़ी नहीं है
7	25.1% - 50% पत्ती क्षेत्र आघात और क्षति स्पष्ट है
9	सभी पौधों पर घाव, पत्तियों का झड़ना, पौधों की मृत्यु और क्षति 50% से अधिक आम बात है।

उपचार के आवेदन के 30 दिनों के बाद, अमोनियम एसीटेट विधि (हैनवे और हेडल, 1952) द्वारा मृदा में उपलब्ध पोटेशियम का निर्धारण करने के लिए प्रत्येक उपचार से मृदा के नमूनों का विश्लेषण किया गया। उपचार T1 (म्यूरेट ऑफ पोटाश) के प्रयोग से मृदा में सबसे अधिक पोटेशियम 178.29 kg/ha, इसकें बाद T4 (केले के छिलके की राख) 163.77 kg/ha, T2 (केले के छिलके का पाउडर) 149.37 kg/ha और T3 (केले के छिलके का घोल) 146.33 kg/ha में उपलब्ध हुआ, जबकि मृदा में सबसे कम उपलब्ध पोटेशियम (128.37 kg/ha) नियंत्रण उपचार में पाया गया।

केले के छिलके की राख या बायोचार से युक्त उपचार T4 पोटेशियम की कमी को कम करने और *फ़ीबी गोलपेरेन्सिस* अंकुरों के विकास में सुधार करने में सबसे प्रभावी पाया गया। यह अध्ययन साबित करता है कि केले के छिलके के मिश्रण को फ़ीबी गोलपेरेन्सिस पौधों में पोटेशियम की कमी को कम करने के लिए प्राकृतिक उर्वरक के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।

****

पूर्वोत्तर भारत में जैव-विविधता संरक्षण: खतरे और संरक्षण के प्रयास

राकेश कुमार प्रजापत, अमिताव रॉय, रेखा माहातो,
प्रेम चंद ज्ञानी, कर्मा ग्यालपो भूटिया और सत्यम बरदलै
भा.वा.अ.शि.प.- वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट

वन, अपने समृद्ध प्राकृतिक संसाधनों के साथ, पृथ्वी को हरे कंबल की तरह ढकते हैं जो न केवल असंख्य वस्तुओं का उत्पादन करते हैं बल्कि पर्यावरणीय सेवाएँ भी प्रदान करते हैं। आजकल, जंगल तेजी से घट रहे हैं जिसका सीधा असर क्षेत्र की जैविक विविधता पर पड़ा है, जिससे विभिन्न प्रजातियाँ बड़े पैमाने पर विलुप्त हो रही हैं। पूर्वोत्तर क्षेत्र की जनजातियाँ मुख्य रूप से पाक कला, चारा, फाइबर, लकड़ी, औषधीय वस्तुओं आदि के मामले में आजीविका के कई अवसरों के लिए जंगल पर निर्भर हैं। यह क्षेत्र बाँस की विविधता का भी गढ़ है, जो भारत में दर्ज 136 बाँस प्रजातियों में से 63 का दावा करता है। इसकें अलावा, पूर्वी हिमालय क्षेत्र, विशेष रूप से पूर्वोत्तर, हिमालयी रोडोडेंड्रोन प्रजातियों के एक महत्त्वपूर्ण हिस्से का घर है, हिमालय में दर्ज 82 प्रजातियों में से 70 यहीं पाई जाती हैं। अपने पारिस्थितिक महत्त्व के अलावा, पूर्वोत्तर क्षेत्र की वनस्पतियाँ अत्यधिक औषधीय महत्त्व रखती हैं। भारत दुनिया के 12 मेंगा जैव-विविधता वाले देशों में से एक है, जिसमें तीन जैव-विविधता हॉटस्पॉट हैं - पश्चिमी घाट, पूर्वी हिमालय और इंडो-बर्मा। पूर्वोत्तर भारत, जिसमें सात बहनों के राज्य और सिक्किम शामिल हैं, भारत के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 7.7% हिस्सा है, जो 50% वनस्पतियों (8000 प्रजातियों) का समर्थन करता है, जिनमें से 31.58% (2526 प्रजातियां) स्थानिक हैं। यह क्षेत्र ऑर्किड, फ़र्न, ओक्स, बाँस, मैगनोलियास और कई अन्य औषधीय पौधों के साथ-साथ दुर्लभ और लुप्तप्राय पशु प्रजातियों से समृद्ध है। यह क्षेत्र उष्णकटिबंधीय वर्षा वनों से लेकर अल्पाइन झाड़ियों तक फैली समृद्ध जैव-विविधता का समर्थन करता है, जिसकी पारिस्थितिकी तंत्र के रखरखाव में महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

पूर्वोत्तर की निम्नलिखित विशेषताएं इसे जैव-विविधता "हॉटस्पॉट" बनाती हैं।

- इस क्षेत्र में 51 प्रकार के वन हैं जिन्हें मोटे तौर पर छह श्रेणियों में विभाजित किया गया है।
- भारत में 9 महत्त्वपूर्ण वनस्पति प्रकारों में से 6 पूर्वोत्तर क्षेत्र में पाए जाते हैं।
- क्षेत्र की पुष्प विविधता पूर्वोत्तर राज्यों में उच्चतम विविधता की समृद्धि को भी प्रेरित करती है।
- देश में 4.10% फूल वाले पौधे लुप्तप्राय हैं। 1500 लुप्तप्राय पुष्प प्रजातियों में से 800 पूर्वोत्तर से बताई गई हैं। (इंडियन रेड डेटा बुक, बॉटनिकल सर्वे ऑफ इंडिया द्वारा प्रकाशित।)
- पूर्वोत्तर क्षेत्र के लिए इसकें पुष्प समकक्ष की तुलना में जीव-जंतुओं की विविधता अपेक्षाकृत बेहतर ढंग से प्रलेखित है।
- पूर्वोत्तर क्षेत्र में उच्च वन आवरण (भौगोलिक क्षेत्र का 60%) भी उच्च जैविक विविधता का कारण बनता है।

पूर्वोत्तर भारत में जैव-विविधता के खतरे:

वर्तमान परिदृश्य में, पूर्वोत्तर क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के खतरे इसकें पारिस्थितिक संतुलन और वन जैव-विविधता को खतरे में डाल रहे हैं।

- **वनों की कटाई**: आधुनिक विकासात्मक गतिविधि के कारण वनों की कटाई होती है जिसकें परिणामस्वरूप निवास स्थान की हानि होती है जिससे लुप्तप्राय और स्थानिक वन्यजीव प्रजातियों का बड़े पैमाने पर विनाश होता है।

- **झूम खेती:** कई आदिवासी समुदायों द्वारा प्रचलित पारंपरिक झूम खेती, जिसे "झूम" के नाम से जाना जाता है, का क्षेत्र की पारिस्थितिकी और संरक्षण प्रयासों पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। यह झूम खेती निवास स्थान के नुकसान और क्षरण में योगदान करती है, जिससे स्थानीय पारिस्थितिक तंत्र पर दबाव बढ़ जाता है।

- **जंगल की आग:** जंगल की आग पूर्वोत्तर के जंगलों के लिए एक महत्त्वपूर्ण खतरा है, जिससे वनस्पति और वन्यजीव आवासों को व्यापक नुकसान होता है।

- **पर्यावास हानि:** विभिन्न प्रयोजनों के लिए वनों की कटाई और भूमि रूपांतरण के परिणामस्वरूप निवास स्थान की हानि होती है, जिससे पूर्वोत्तर भारत की कई प्रजातियाँ विलुप्त हो जाती हैं। यदि इस प्रवृत्ति को नियंत्रित नहीं किया गया, तो यह मानव गतिविधि के कारण बड़े पैमाने पर विलुप्त होने में योगदान दे सकती है।

- **वन्यजीवों का अवैध शिकार**: इस क्षेत्र की प्रचुर दुर्लभ और स्थानिक प्रजातियाँ इसे शिकारियों का निशाना बनाती हैं। पड़ोसी देशों के साथ अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं पर वन्यजीवों की तस्करी इस खतरे को बढ़ा देती है।

- **तस्करी:** लकड़ी की तस्करी और गैंडे के सींग और बाघ की खाल सहित जानवरों के अंगों की तस्करी जैसी अवैध गतिविधियाँ, क्षेत्र के जंगलों को और ख़राब करती हैं और इसकें वन्यजीवों को खतरे में डालती हैं।

- **वाणिज्यिक कृषि के लिए अत्यधिक दोहन**: वन उत्पादों के अवैध निष्कर्षण सहित गहन वाणिज्यिक कृषि, न केवल जैव-विविधता को बाधित करती है बल्कि रसायनों के अत्यधिक उपयोग के माध्यम से प्रदूषण को भी जन्म देती है।

- **मानव-वन्यजीव संघर्ष**: वन्यजीव प्रवास मार्गों के विघटन से अक्सर मनुष्यों और जानवरों के बीच संघर्ष होता है, खासकर असम की तलहटी और ब्रह्मपुत्र नदी के किनारे जैसे क्षेत्रों में।

- **बांधों का निर्माण**: बड़े पैमाने पर बांध निर्माण से पारिस्थितिकी तंत्र बदल जाता है और विवाद पैदा होता है, जैसा कि असम, मणिपुर और सिक्किम जैसे राज्यों में परियोजनाओं के खिलाफ विरोध प्रदर्शन में देखा गया है। प्रवासन: पड़ोसी देशों से आप्रवासियों का आगमन सांस्कृतिक और सामाजिक चुनौतियां पैदा करता है, जिससे पहचान और रीति-रिवाजों को खतरा होता है।

- **खनन:** कोयला खनन, विशेष रूप से मेघालय और असम में खुली खनन, प्राकृतिक आवासों के व्यापक विनाश और प्रदूषण का कारण बनता है। जनसंख्या वृद्धि: तेजी से जनसंख्या वृद्धि के कारण संसाधनों पर दबाव बढ़ जाता है, जिससे वनों की कटाई, मृदा का कटाव और जलवायु परिवर्तन बढ़ जाता है, जिससे क्षेत्र में प्रजातियाँ और अधिक खतरे में पड़ जाती हैं।

- **औद्योगीकरण और शहरीकरण**: शहरी विस्तार और औद्योगिक विकास प्रदूषण और निवास स्थान के विनाश में योगदान करते हैं, जिससे पूर्वोत्तर भारत में जैव-विविधता के नुकसान में तेजी आती है।

जैव-विविधता संरक्षण:

वर्ष 1894 की पहली वन-नीति में रेलवे चप्पल आपूर्ति के प्रमुख स्रोत के रूप में वनों पर ध्यान केंद्रित किया गया। राष्ट्रीय वन नीति, 1988 के रूप में नई संशोधित वन-नीति वनों की पर्यावरणीय भूमिका को सर्वोच्च प्राथमिकता देती है। नीति में कहा गया है कि वन नीति का मुख्य उद्देश्य वायुमंडलीय संतुलन सहित पर्यावरणीय स्थिरता और पारिस्थितिक संतुलन सुनिश्चित करना होना चाहिए, जो सभी जीवन रूपों, मानव, पशु और पौधों के भरण-पोषण के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। भारत पहला देश था जिसने अपने संविधान में संशोधन करके राज्य को सार्वजनिक स्वास्थ्य, वन और वन्य जीवन की सुरक्षा के लिए पर्यावरण की रक्षा और सुधार करने की अनुमति दी थी। 1985 में, भारत सरकार ने पर्यावरण के बारे में पर्यावरण मूल्यांकन और सर्वेक्षण और प्रचार कार्यों की निगरानी, प्रवर्तन, संचालन के लिए पर्यावरण और वन मंत्रालय (एमओईएफ) बनाया। पौधों और जानवरों की प्रजातियों सहित जैव-विविधता के संरक्षण के लिए विभिन्न उपाय अपनाए जाते हैं। संरक्षण प्रयासों में आम तौर पर दो मुख्य दृष्टिकोण शामिल होते हैं: इन-सीटू संरक्षण और एक्स-सीटू संरक्षण। इन-सीटू संरक्षण उनके प्राकृतिक आवासों के भीतर प्रजातियों और पारिस्थितिक तंत्र की रक्षा करने, उनके निरंतर अस्तित्व और पारिस्थितिक कार्यप्रणाली को सुनिश्चित करने पर केंद्रित है। पूर्व-स्थाने संरक्षण में प्रजातियों को उनके प्राकृतिक आवासों के बाहर संरक्षित करना शामिल है, अक्सर बंदी प्रजनन कार्यक्रमों, वनस्पति उद्यानों या बीज बैंकों के माध्यम से, विलुप्त होने के खिलाफ सुरक्षा के रूप में और भविष्य के पुनरुत्पादन प्रयासों के लिए।

जैव-विविधता संरक्षण हेतु राष्ट्रीय स्तर पर किये गये प्रयास:

भारत ने विभिन्न कानूनों के कार्यान्वयन और समर्पित संस्थानों की स्थापना के माध्यम से जैव-विविधता संरक्षण के लिए एक मजबूत प्रतिबद्धता प्रदर्शित की है। 1985 में पर्यावरण और वन मंत्रालय (एमओईएफ) के गठन ने पर्यावरण संरक्षण प्रयासों की निगरानी, लागू करने और बढ़ावा देने पर सरकार के फोकस को रेखांकित किया। इसकें अतिरिक्त, देश भर में जैव-विविधता की रक्षा के लिए भारतीय वन अधिनियम 1972, वन्यजीव संरक्षण अधिनियम 1980, पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986 और जैव-विविधता अधिनियम 2002 सहित एक व्यापक कानूनी ढांचा बनाया गया है। 1976 से लुप्तप्राय प्रजातियों के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर कन्वेंशन (CITES) और 1992 से जैविक विविधता पर कन्वेंशन (CBD) जैसे अंतर्राष्ट्रीय समझौतों में भारत की भागीदारी वैश्विक संरक्षण प्रयासों के प्रति इसकी प्रतिबद्धता को उजागर करती है। पूर्वोत्तर क्षेत्र सहित संरक्षित क्षेत्रों, बायोस्फीयर रिजर्व, अभयारण्यों, राष्ट्रीय उद्यानों और वनस्पति उद्यानों की स्थापना, इसकी समृद्ध जैव-विविधता को संरक्षित करने के लिए भारत के समर्पण को प्रदर्शित करती है।

इनके अलावा, उत्तर पूर्व क्षेत्र में जैव-विविधता के संरक्षण के लिए राष्ट्रीय सरकार द्वारा निम्नलिखित उपाय किए जाने चाहिए:

- पूर्वोत्तर क्षेत्र में अद्वितीय वन स्वामित्व वाले राज्यों को ध्यान में रखते हुए, राष्ट्रीय स्तर पर मौजूद नियमों के अलावा एक अलग विनियमन या अधिनियम बनाने पर विचार करने की मांग की गई है जो पूर्वोत्तर क्षेत्र के लिए बनाया गया है।

- एक अलग विनियमन तैयार करते समय राष्ट्रीय स्तर पर नीति निर्माताओं द्वारा पूर्वोत्तर राज्यों की जमीनी हकीकत के बारे में उचित समझ।
- स्थानीय समुदायों द्वारा वन स्वामित्व और प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग से संबंधित प्रथागत और वैधानिक कानूनों और विनियमों के बीच संघर्ष को संबोधित करने की तत्काल आवश्यकता है।
- क्षेत्र में जैव-विविधता संरक्षण के लिए उचित कदम उठाने के लिए, राज्य के प्रवर्तन तंत्र के लिए लक्षणों से निपटने के बजाय जैव-विविधता हानि के मूल कारणों को समझना आवश्यक है।
- क्षेत्र में बुनियादी ढांचे के विकास से निपटने के दौरान पर्यावरण और सामाजिक प्रभाव मूल्यांकन के लिए कठोर मॉडल और मानक विकसित करने की आवश्यकता है।
- उत्तर पूर्व भारत के कई हिस्सों में वन आधारित आजीविका को विकसित करने और बढ़ाने की काफी संभावनाएं हैं। इस प्रकार के तंत्र विकसित करना जो वन आधारित आजीविका को आर्थिक विकास और संरक्षण प्रक्रिया में भूमिका निभाने में सक्षम बना सकें।

****

चाय में डाइबैक उत्पन्न करने वाले *फ्यूजेरियम सोलानी* (*Fusarium solani*) का जैव नियंत्रण

काजल गुप्ता, गुरप्रीत कौर भामरा और सुमोना चेतिया
भा.वा.अ.शि.प.- वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट

परिचय

चाय (*Camellia sinensis*) दुनिया भर में खपत होने वाला दूसरा सबसे लोकप्रिय और सबसे सस्ता पेय पदार्थ है। भारत वित्तीय वर्ष 2022-23 (वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय, भारत) के दौरान लगभग 1350 मिलियन किलोग्राम उत्पादन के साथ दूसरा सबसे बड़ा चाय उत्पादक और काली चाय उत्पादक है। असम राज्य वित्तीय वर्ष 2022-23 में चाय उत्पादन (लगभग 37.92 मिलियन किलोग्राम) में सर्वोच्च स्थान पर रहा, इसकें बाद पश्चिम बंगाल लगभग 24 मिलियन किलोग्राम के साथ दूसरे स्थान पर रहा। एक कली और दो या तीन नाजुक पत्तियों वाली चाय की पत्तियों की मुख्य रूप से कटाई की जाती है। यह व्यावसायिक रूप से 58 देशों में उगाया जाता है, (क्षेत्रफल और उत्पादन क्रमशः लगभग 4.12 मिलियन हेक्टेयर और 5.36 मिलियन टन) जो सभी पांच महाद्वीपों का प्रतिनिधित्व करता है, जिसमें एशिया सबसे बड़ा क्षेत्र है। चाय बागानों में 380 से अधिक कवक रोग और 250 कीट प्रजातियों (हजारिका 2009) के हमले का खतरा है। इनमें से 190 कवक और 167 कीट अकेले पूर्वोत्तर भारत में पाए गए हैं, जिससे चाय उद्योग को प्राथमिक और द्वितीय उत्पादन दोनों में नुकसान हुआ है (बोरा 2021)। बीमारियों और कीटों के कारण औसतन 11-55% उपज का नुकसान होता है, अकेले पूर्वोत्तर भारत में चाय का वार्षिक उत्पादन 85 मिलियन किलोग्राम के आसपास है, जिसकी कीमत 425 करोड़ रुपये है (टी बोर्ड ऑफ इंडिया 2020। दुनिया भर में, चाय के पौधों को कई जड़, तने और पत्तियों के रोगों से जूझना पड़ता है। पत्तियों के रोग, ब्लिस्टर ब्लाइट (Blister blight), ग्रे ब्लाइट (Grey blight) और ब्राउन ब्लाइट (Brown blight) विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि वे कली और दो सबसे छोटी पत्तियों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करते हैं, जिससे कटाई योग्य टहनियाँ नष्ट हो जाती हैं (पांडे एट अल. 2021)।

फ्यूजेरियम सोलानी (*Fusarium solani*) के कारण होने वाली चाय की डाईबैक (Dieback) बीमारी पूर्वोत्तर भारत में विशेष रूप से असम में सबसे विनाशकारी बीमारियों में से एक है, जो भारी फसल नुकसान के लिए जिम्मेदार है, क्योंकि यह कोमल टहनियों को संक्रमित करती है। *फ्यूजेरियम सोलानी* (*F solani*) के कारण होने वाली डाईबैक चाय की पत्तियों को गंभीर रूप से नुकसान पहुँचाती है और कटाई योग्य टहनियों की गुणवत्ता और मात्रा दोनों को कम करती है (बाबू एट अल. 2022)। चाय में *फ्यूजेरियम सोलानी* (*F solani*) का संक्रमण उत्तर पूर्व भारत में खतरनाक तरीके से बढ़ रहा है। यह जलवायु परिस्थितियों में परिवर्तन या रोगजनक विषाणु में वृद्धि के कारण हो सकता है। वर्तमान जांच में, रासायनिक कवकनाशी के हानिकारक प्रभावों को कम करने के लिए चाय की खेती में डाइबैक (Dieback) रोग को नियंत्रित करने के लिए देशी पौधों की प्रजातियों से हर्बल एक्सट्रेक्ट का मूल्यांकन किया गया। हमने 30, 50, 70 और 100% कंसंट्रेशन पर *ल्यूकास एस्पेरा (Leucas aspera), लैंटाना कैमरा (Lantana camara), क्लेरोडेंड्रम विस्कोकम (Clerodendrum viscocum), निकोटियनम टोबैकम (Nicotiana tobaccum), निकोटियनम रस्टिका(Nicotiana rustica)* एक्सट्रेक्ट (जलीय और विलायक दोनों) की इन विट्रो (*in vitro*) क्षमता का मूल्यांकन किया है और उनकी क्षेत्र प्रभावकारिता स्थापित में इस्तेमाल की गई। अध्ययन का महत्त्व डाईबैक रोगजनक के खिलाफ एक वैकल्पिक रोग नियंत्रण रणनीति विकसित करने के साथ-

साथ रासायनिक कवक नाशकों पर निर्भरता को कम करना है। वर्तमान अध्ययन का उद्देश्य *फ्यूजेरियम सोलानी* (*F solani*) के खिलाफ स्थानीय रूप से उपलब्ध पौधों के एक्सट्रेक्ट की जैव दक्षता को विकसित और मूल्यांकन करना है ताकि क्षेत्र में मूल्यांकन के तहत एकीकृत रोग प्रबंधन रणनीति के घटक के रूप में इसकी उपयुक्तता का आकलन किया जा सकें।

सामग्री और विधियाँ

पौधों के एक्सट्रेक्ट का संग्रह :वर्तमान जाँच में पाँच परीक्षण पौधों का उपयोग किया गया, अर्थात् *ल्यूकास, लैंटाना, क्लेरोडेंड्रम, निकोटियनम टोबैकम, निकोटियनम रस्टिका*, जिनमें एंटीफंगल गुण होते हैं। इन्हें असम के जोरहाट जिले के विभिन्न क्षेत्रों के आसपास के उनके प्राकृतिक आवासों से एकत्र किया गया। पौधों की प्रजातियों के संग्रह के दौरान किशोर तने के साथ परिपक्व पत्तियों को इकट्ठा करने पर अत्यधिक ध्यान दिया जा रहा था।

पौधों के एक्सट्रेक्ट की तैयारी: एकत्रित पत्तियों को नल के पानी के नीचे धोया गया और उसकें बाद sterilized पानी से धोया गया। फिर, पत्तियों को 15-20 दिनों के लिए छाया में सुखाया गया और pestle और mortar की मदद से पीस लिया गया। संदूषण से बचने के लिए एक्सट्रेक्ट को रुई से बंद फ्लास्क में डाला गया और 100°C पर 10 मिनट तक गर्म किया गया। एंटी-फंगल जांच poisoned food तकनीक (ग्रोवर और मूर, 1962) का उपयोग किया गया। पौधे के एक्सट्रेक्ट की विभिन्न सांद्रता (30, 50, 70, 100%) को परीक्षण रोगज़नक़ के जीवाणुरहित पेट्री-डिश में टीकाकरण के लिए अगर (पीडीए) माध्यम में किया गया। पृथक रोगज़नक़ को अगर (पीडीए) में उगाया गया था, जिसे poisoned माध्यम की विभिन्न सांद्रता वाले पेट्री-डिश के केंद्र में रखा गया था और 6 दिनों के लिए 27±2°C पर इनक्यूबेट किया गया। संरोपण के बाद 24 घंटे के अंतराल पर 6 दिनों तक कवक की रेडियल वृद्धि (सेमी) को मापा गया।

परिणाम

अलग किए गए कवक की पहचान सांस्कृतिक और रूपात्मक विशेषताओं के आधार पर *फ्यूजेरियम सोलानी* के रूप में की गई। पत्तियों के एक्सट्रेक्ट को डिस्टिल्ड जल में 30, 50, 70 और 100% सांद्रता पर तैयार किया गया और इसकें प्रभावों का अध्ययन किया गया। *ल्यूकास, लैंटाना* और *क्लेरोडेंड्रम* के पौधे के एक्सट्रेक्ट में 30, 50, 70 और 100% सांद्रता पर संरोपण के बाद 72 घंटों के भीतर सभी उपचारों में कवक वृद्धि का पूर्ण अवरोध दर्ज किया गया। जबकि 100% सांद्रता पर काले तम्बाकू (*निकोटियाना टोबैकम*) में थोड़ी कवक वृद्धि देखी गई। सफेद तम्बाकू (*निकोटियाना रस्टिका*) में, अन्य उपचारों की तुलना में 50, 70 और 100% सांद्रता पर न्यूनतम कवक वृद्धि दर्ज की गई। तालिका 1 के डेटा से पता चला है कि, *ल्यूकास एस्पेरा, लैंटाना कैमरा* और *क्लेरोडेंड्रम विस्कोकम* का एक्सट्रेक्ट 100% सांद्रता पर काले तंबाकू (*निकोटियाना टोबैकम*) और 50, 70 और 100% सांद्रता पर सफेद तंबाकू (*निकोटियाना रस्टिका*) की तुलना में कवक के विकास को कम करने में अधिक प्रभावी था। परिणामों के आधार पर, सभी एक्सट्रेक्ट ने कवक के विकास को कम करने पर एक महत्त्वपूर्ण प्रभाव दिखाया। एक्सट्रेक्ट की सांद्रता का स्तर जितना अधिक होता है, उतनी ही कम माइसेलियल वृद्धि देखी जाती है। विभिन्न सांद्रता स्तरों पर *ल्यूकास, लैंटाना, क्लेरोडेंड्रम, निकोटियानम, निकोटियानम रस्टिका* के पौधे के एक्सट्रेक्ट की एंटिफंगल प्रभावकारिता को प्रभावित की गई, पौधों के एक्सट्रेक्ट के निरोधात्मक प्रभाव को द्वितीयक

मेंटाबोलाइट्स (फ्लेवोनोइड्स, ट्राइटरपेनोइड्स, लैंटानिन), फेनोलिक्स, एल्कलॉइड्स और सल्फर युक्त यौगिकों जैसे एंटीफंगल यौगिकों की उपस्थिति के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। इस प्रयोग से, यह स्पष्ट है कि सभी पौधों के एक्सट्रेक्ट ने लक्ष्य कवक *फ्यूजेरियम सोलानी* के रेडियल विकास को बाधित किया। *ल्यूकास, लैंटाना, क्लेरोडेंड्रम, निकोटियनम टोबैकम* और *निकोटियनम रस्टिका* जैसी पादप प्रजातियों में रोगाणुरोधी यौगिकों की उपस्थिति की रिपोर्ट पहले के अध्ययनों में की गई है। इस्तेमाल किए गए पौधों के एक्सट्रेक्ट में से *ल्यूकस, लैंटाना और क्लेरोडेंड्रम* को 50, 70 और 100% सांद्रता पर *निकोटियाना रस्टिका* और 100% सांद्रता पर *निकोटियाना टोबैकम* के पौधे के अर्क की तुलना में कवक की वृद्धि को रोकने में सबसे प्रभावी पाया गया। इस प्रकार, हमारे परिणामों ने पुष्टि की कि *ल्यूकस, लैंटाना और क्लेरोडेंड्रम* के पौधे के एक्सट्रेक्ट ने सभी सांद्रता पर कवक की वृद्धि को रोक दिया और इसे फ्यूजेरियम सोलानी के कारण चाय की डायबैक बीमारी को नियंत्रित करने के लिए सफलतापूर्वक इस्तेमाल किया जा सकता है। पौधों की बीमारियों को नियंत्रित करने के लिए अकार्बनिक रसायनों का उपयोग करने के नुकसान को ध्यान में रखते हुए, पौधों के एक्सट्रेक्ट का उपयोग दुनिया भर में महत्त्व प्राप्त कर रहा है क्योंकि उनका उपयोग पर्यावरण की दृष्टि से सुरक्षित है। इसलिए हमारा अध्ययन बताता है कि *ल्यूकास एस्पेरा, लैंटाना कैमरा, क्लेरोडेंड्रम विस्कोकम, निकोटियनम टोबैकम, निकोटियनम रस्टिका* के पौधे के एक्सट्रेक्ट प्रभावी हैं और इनका उपयोग रोगजनक कवक, *फ्यूजेरियम सोलानी* के खिलाफ किया जा सकता है जो चाय में डाइबैक रोग पैदा करने के लिए जिम्मेदार है।

****

पूर्वोत्तर भारत का भोज्य 'हरा सोना': मुली बाँस (*मेंलोकैना बैसीफेरा*)

अमिताव रॉय, राकेश कुमार प्रजापत, प्रेम चंद ज्ञानी, कर्मा ग्यालपो भूटिया,
अंशुमान पटेल, रेखा महतो और सत्यम बरदलै
भा.वा.अ.शि.प - वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट

उत्तर पूर्वी भारत अपनी अनूठी जैव विविधता, प्रजातियों की समृद्धि और लुप्तप्राय वनस्पतियों और जीवों की किस्मों के स्पष्ट आवास के लिए व्यापक रूप से प्रसिद्ध है। बाँस देश के इस क्षेत्र के विभिन्न भागों में व्यापक रूप से वितरित घास प्रजातियों के पारिस्थितिक और आर्थिक रूप से सबसे महत्त्वपूर्ण समूह में से एक है। यह पारिस्थितिकी स्थिरता और पर्यावरण संरक्षण का एक अभिन्न अंग होने के साथ-साथ उद्योगों और पाककला के संदर्भ में कई उपयोगों के माध्यम से क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था में एक बड़ी भूमिका निभाता है। यह पारिस्थितिकी-पुनर्स्थापना, क्षीण वन क्षेत्रों के पुनर्ग्रहण और कई अन्य पर्यावरण इंजीनियरिंग गतिविधियों में मदद करता है। *मेंलोकैना बैसीफेरा*, जिसे लोकप्रिय रूप से 'मुली' बाँस के रूप में भी जाना जाता है, एक अनूठी बाँस की प्रजाति है जो विशेष रूप से देश के उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में पाई जाती है और पोएसी परिवार में सबसे बड़े फलों का उत्पादन करने के लिए प्रसिद्ध है। इन बांसों के फलों को पामिटिक एसिड से भरपूर माना जाता है, इनमें संतुलित अमीनो एसिड प्रोफ़ाइल, खनिज और विटामिन बी-3 होता है। मानसून के दौरान, परिपक्व बाँस की जड़ों से नए उभरे हुए बाँस के अंकुर निकलने लगते हैं। प्राचीन काल से ही इन्हें त्रिपुरा, अरुणाचल प्रदेश और पूर्वोत्तर भारत के कई अन्य भागों के विभिन्न जनजातीय समुदायों के लिए लोकप्रिय पाक सामग्री माना जाता है।

वर्गीकरण और वनस्पति विज्ञान

- जगत: पादप
- श्रेणि: ट्रैकियोफाइटा
- वर्ग: लिलियोप्सिडा
- गण: पोएल्स
- कुल: पोएसी

प्रजाति 10-25 मीटर की ऊँचाई तक पहुँचती है; युवा कल्म हरे रंग के होते हैं और अंततः भूरे रंग के हो जाते हैं जबकि युवा हरे कल्म म्यान परिपक्व होने पर भूरे रंग में बदल जाते हैं। यह प्रजाति हर 50 साल में सामूहिक फूल दिखाती है और बड़े, मांसल और नाशपाती जैसे फल पैदा करती है।

जनसंख्या वितरण और पारिस्थितिकी

यह प्रजाति मुख्य रूप से दक्षिण पूर्व एशिया के विभिन्न देशों जैसे भारत, बांग्लादेश, म्यांमार, लाओस, थाईलैंड और कंबोडिया में वितरित की जाती है। भारत में, यह प्रजाति मुख्य रूप से देश के उत्तर-पूर्वी भाग में, मुख्य रूप से असम, अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम, नागालैंड और त्रिपुरा राज्यों में पाई जाती है। विशेष रूप से मिजोरम में, यह एक बहुत ही प्रमुख बाँस की प्रजाति है जो राज्य के पूरे बाँस के जंगल के आधे से अधिक हिस्से को कवर करती है। यह प्रजाति अच्छी जल निकासी वाली स्वस्थ मृदा वाले उच्च वर्षा वाले क्षेत्रों को पसंद करती है, जो ज्यादातर

उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय वर्षा वनों में एमएसएल से 1500 मीटर की ऊंचाई तक अच्छी तरह से पनपती है।

प्रजाति का महत्त्व

• **प्रजाति के पारिस्थितिकीय निहितार्थ**: यह प्रजाति हाथियों, विशिष्ट कृंतक प्रजातियों और कई कीटों जैसे विभिन्न महत्त्वपूर्ण जानवरों के लिए आवास और भोजन का स्रोत प्रदान करके एक महत्त्वपूर्ण प्रजाति के रूप में कार्य करती है।

• **ग्रामीण अर्थव्यवस्था और आजीविका के अवसरों के सृजन के लिए सहायता**: यह प्रजाति ग्रामीण अर्थव्यवस्थाओं को बहुत बड़ा समर्थन प्रदान करती है और पारंपरिक प्रथाओं और आजीविका सृजन में योगदान देती है। इस प्रजाति का व्यापक रूप से निर्माण, कागज उद्योग, हस्तशिल्प और फर्नीचर और खाद्य उद्योग में उपयोग किया जाता है।

• **मुली बाँस की पोषण संबंधी रूपरेखा**: मुली बाँस की टहनियों में पोटेशियम, कैल्शियम और फॉस्फोरस के उच्च स्तर होते हैं और साथ ही विटामिन सी, बी3, बी6 और आहार फाइबर से भरपूर होते हैं। इस प्रजाति के फल विशेष रूप से पोटेशियम, विटामिन बी3 से भरपूर होते हैं और साथ ही संतुलित अमीनो एसिड प्रोफाइल और एंटी-ऑक्सीडेंट फेरुलिक एसिड होते हैं।

• **रोगाणुरोधी गतिविधि**: इस प्रजाति के अंकुर *स्टैफिलोकोकस ऑरियस, कोरिनेबैक्टीरियम डिप्थारिया और बोर्डेटेला पर्टुसिस* जैसे विभिन्न रोगजनक बैक्टीरिया के खिलाफ रोगाणुरोधी गुणों के लिए भी लोकप्रिय हैं।

• **अन्य औषधीय गुण**: मेंलोकैना में मधुमेंह विरोधी गतिविधि होती है और यह उपचार की पर्याप्त अवधि के बाद बढ़े हुए रक्त शर्करा के स्तर को कम करके सामान्य स्तर पर लाता है। इस प्रजाति का परीक्षण बढ़े हुए कोलेस्ट्रॉल और ट्राइग्लिसराइड के स्तर की बीमारी के लिए भी किया गया है।

प्रमुख खतरे और संरक्षण रणनीति

इस प्रजाति को वाणिज्यिक उद्देश्यों के लिए उपयोग के माध्यम से अत्यधिक दोहन की गतिविधियों से भारी खतरा है। इस प्रजाति के लिए अन्य चुनौतियाँ भी हैं जैसे कि खेती के बदलते तरीकों के कारण आवास का विनाश और शहरीकरण के माध्यम से बुनियादी ढाँचे का विकास। इसलिए, इस प्रजाति को सतत कटाई प्रथाओं, विभिन्न वनरोपण और पुनर्वनरोपण कार्यक्रमों और विशेष बाँस प्रजातियों के पारिस्थितिक महत्त्व के बारे में जागरूकता बढ़ाने के माध्यम से मजबूत संरक्षण प्रयासों की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

मेंलोकाना बैक्सीफेरा देश के उत्तर पूर्वी क्षेत्र के लिए विशेष रूप से एक महत्त्वपूर्ण बाँस प्रजाति है और यह क्षेत्र की कई जनजातियों की आजीविका और पारंपरिक प्रथाओं का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। आवास विनाश और अनियमित विकासात्मक गतिविधियों की चुनौतियों के कारण यह प्रजाति आनुवंशिक क्षरण और जैव-विविधता हानि के खतरों के दबाव में है। हालाँकि, बाँस पर अखिल भारतीय समन्वित परियोजना जैसे कई जागरूकता कार्यक्रमों और परियोजनाओं के कारण क्षेत्र की अन्य महत्त्वपूर्ण बाँस प्रजातियों के साथ-साथ *मेंलोकाना बैक्सीफेरा* के संरक्षण और आनुवंशिक वृद्धि के लिए प्रतिक्रिया बढ़ रही है। हालाँकि, उन्नत आनुवंशिकी और जैव-प्रौद्योगिकी दृष्टिकोणों की सहायता से नए संरक्षण प्रोटोकॉल को आगे बढ़ाने और लागू करने की बहुत गुंजाइश है।

****

बाँस की कोपलें (बैम्बू शूट): पूर्वोत्तर भारत का मुख्य भोजन

सोनकेश्वर शर्मा, मुदांग यम्पी, परिश्मिता हजारिका, पंकज गोगोई
भा.वा.अ.शि.प.- वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट

पूर्वोत्तर भारत जैव-विविधता से समृद्ध क्षेत्र है, जहाँ पेड़-पौधों और जीवों की कई प्रजातियाँ पाई जाती हैं। इनमें बाँस (बैम्बू) एक मुख्य प्रजाति है। बाँस घास परिवार (Poaceae) से जुड़ा हुआ एक तेजी से बढ़ने वाला, काष्ठीय बारहमासी पौधा है। दुनिया में ऐसा पाया गया है कि इसकी कुछ प्रजातियाँ एक दिन में 90-100 सेंटीमीटर (~36 इंच) तक बढ़ सकती हैं। पूर्वोत्तर भारत के असम, नागालैंड, मणिपुर, मिज़ोरम और अरुणाचल प्रदेश जैसे राज्यों की पहाड़ी इलाकों में बाँस के जंगल बहुतायत में पाए जाते हैं। इस क्षेत्र का मौसम बाँस के तेजी से बढ़ने के लिए बहुत अनुकूल माना जाता है, जिससे यह आसानी से फलता-फूलता है। बाँस के जंगल पर्यावरण के लिए बहुत लाभकारी हैं। ये मृदा को मजबूत बनाते हैं, मृदा के कटाव को रोकते हैं और जल संरक्षण में मदद करते हैं। साथ ही, बाँस स्थानीय अर्थव्यवस्था का एक अहम हिस्सा है, क्योंकि इसका इस्तेमाल बुनाई, निर्माण और कागज बनाने जैसे कई पारंपरिक और व्यावसायिक कामों में किया जाता है। बाँस की कोपलें (बाँस के नए अंकुर) इस क्षेत्र के खानपान और जीवनशैली का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा हैं। ये कोपलें मुलायम, पौष्टिक और स्वास्थ्य के लिए फायदेमंद होती हैं। इनमें फाइबर, विटामिन, खनिज, पोटैशियम, अमीनो एसिड और एंटीऑक्सीडेंट्स भरपूर मात्रा में होते हैं, जबकि इनमें कैलोरी और वसा कम होती है। स्वास्थ्य की दृष्टि से भी बाँस की कोपलों में सूजन-रोधी, एंटीमाइक्रोबियल और एंटीऑक्सीडेंट गुण होते हैं, जो पाचन संबंधी समस्याओं और हृदय रोग जैसी कई बीमारियों में लाभकारी माने जाते हैं। पारंपरिक चिकित्सा में, इन्हें श्वसन स्वास्थ्य सुधारने, रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने और शरीर को विषैले तत्वों से मुक्त करने के लिए भी उपयोग किया जाता है। ये वसंत ऋतु में ताज़ा और पोषक तत्वों से भरपूर होती हैं, इसलिए इस मौसम में इनका उपयोग ज़्यादा किया जाता है। बाँस की कोपलों का स्वाद हल्का मीठा से लेकर थोड़ा कड़वा तक हो सकता है, जो बाँस की प्रजाति और पकाने के तरीके पर निर्भर करता है। इन्हें अचार, फर्मेंटेड (किण्वित), सुखाकर या ताज़ा पकाकर खाया जाता है। ये कोपलें करी, सूप और स्टू जैसे व्यंजनों में डाली जाती हैं और अक्सर मछली, सूअर का मांस या चिकन के साथ पकाई जाती हैं, जो इस क्षेत्र के मुख्य आहार हैं।

पूर्वोत्तर भारत के अलग-अलग राज्यों में बाँस की कोपलों को अलग नामों से जाना जाता है। जैसे:

- असम में इसे खोरिसा कहते हैं और पारंपरिक व्यंजन "खार" में इस्तेमाल किया जाता है।
- असम में "सुंगा पीठा" नामक व्यंजन भी बनाया जाता है, जो बाँस की कोपलों और उबले चावल से तैयार किया जाता है और त्योहारों पर खास तौर पर खाया जाता है।
- मणिपुर में इसे सोइबम कहा जाता है और अचार या फर्मेंटेड करके संरक्षित किया जाता है।
- सिक्किम में इसे मेंसु कहते हैं।
- नागालैंड में यह "बैम्बू शूट विथ पोर्क" करी में मिलाया जाता है।

पूर्वोत्तर भारत की पारंपरिक रसोइयों में बाँस की कोपलों की भूमिका

बाँस की कोपलें न केवल स्वादिष्ट होती हैं, बल्कि ये पूर्वोत्तर भारत की संस्कृति और पारंपरिक व्यंजनों का एक अहम हिस्सा भी हैं। ये पर्यावरण अनुकूल (ईको-फ्रेंडली) खाद्य स्रोत हैं। इसके उत्पादन में हानिकारक कीटनाशकों या उर्वरकों की आवश्यकता नहीं होती। बाँस की कोपलें केवल भोजन का हिस्सा नहीं हैं, बल्कि पूर्वोत्तर भारत के आदिवासी समुदायों की संस्कृति का अहम हिस्सा हैं। यहाँ के लोगों का बाँस के साथ सदियों पुराना रिश्ता है। बाँस का इस्तेमाल खाने के अलावा धार्मिक रीति-रिवाजों, समारोहों और त्योहारों में भी होता है। कई आदिवासी समुदाय बाँस को पवित्र मानते हैं, जैसे भारत में केले के पेड़ और पत्तों का इस्तेमाल कई रीति-रिवाजों में होता है। उदाहरण के तौर पर, मिजोरम के मिज़ो समुदाय में "बाँस कोपल उत्सव" मनाया जाता है। यह त्योहार बाँस की कोपलों और मौसमी फसलों के आगमन का प्रतीक है। यह न सिर्फ प्रकृति की देन का जश्न है, बल्कि समुदाय के लोगों के बीच रिश्तों को भी मजबूत करता है। इसी तरह, नागालैंड में बाँस का पारंपरिक मान्यताओं और रीति-रिवाजों से गहरा नाता है। वहाँ के धार्मिक अनुष्ठानों और संरचनाओं में बाँस के प्रति सम्मान दिखता है। बाँस की कोपलें नई ज़िंदगी, उर्वरता और जीवन के चक्र को दर्शाती हैं। बाँस की कोपलें यहाँ की खेती और संस्कृति का अहम हिस्सा हैं। यहाँ के कई आदिवासी समुदाय हर साल खेती के दौरान बाँस की कोपलें इकट्ठा करते हैं। इन्हें अप्रैल और मई में काटा जाता है, जब ये सबसे ज्यादा मिलती हैं। ये एक मौसमी व्यंजन मानी जाती हैं, और लोग इनके बाजार में आने का बेसब्री से इंतज़ार करते हैं। बाँस की कोपलें पूर्वोत्तर भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लिए भी बहुत जरूरी हैं। इन्हें काटकर बेचने से कई आदिवासी समुदायों को रोजगार मिलता है। बाँस की खेती ग्रामीण इलाकों में खेती का एक बड़ा हिस्सा है, और इसकी कोपलें स्थानीय बाजारों और शहरों में बिकती हैं (चित्र-1)। बाँस की कोपलें सिर्फ खाने की चीज नहीं, बल्कि एक परंपरा भी हैं। इनका मौसमी होना स्थानीय रीति-रिवाजों और पुराने ज्ञान को आगे बढ़ाने में मदद करता है। अब शहरों और विदेशों में भी इनकी मांग बढ़ रही है, जिससे ग्रामीण किसानों को नए मौके मिल रहे हैं। इससे न सिर्फ किसानों को फायदा हो रहा है, बल्कि इस पौधे से जुड़ी सांस्कृतिक विरासत भी बच रही है।

चित्र-1: पूर्वोत्तर के बाजारों में बाँस की कोपलों की उपलब्धता और लोकप्रियता

बाँस की कोपलों के गुणों का अन्वेषण: भारतीय वानिकी अनुसंधान और शिक्षा परिषद् के वर्षा वन अनुसंधान संस्थान की शोध पहलः

भारतीय वानिकी अनुसंधान और शिक्षा परिषद् के वर्षा वन अनुसंधान संस्थान ने हाल ही में एक अध्ययन किया। इसमें पाया गया कि अलग-अलग कृषि जलवायु उप-क्षेत्रों से लाए गए बाँस की प्रजातियों में रूपात्मक भिन्नताएं होती है। ये अंतर जलवायु परिवर्तन, मृदा की गुणवत्ता, तापमान और पानी की उपलब्धता जैसे कारकों के कारण हो सकते हैं। अध्ययन में यह भी देखा गया कि एक ही प्रजाति के बाँस के कोपलें की खोल के रंग, गूदे के रंग, समान लम्बाई की कोपलें में गाँठों की संख्या आदि में भिन्नताएँ देखी गई। इसकें अलावा, बाँस की कोपलों (नई कोंपलें) में एंटीऑक्सीडेंट और साइनाइड की मात्रा का भी अध्ययन किया गया। बाँस की कोपलें प्राकृतिक एंटीऑक्सीडेंट से भरपूर होती हैं, जिनमें फेनोल, टोकोफेरोल, एस्कॉर्बिक एसिड (विटामिन C) और सेलेनियम व जिंक जैसे आवश्यक खनिज शामिल हैं। ये एंटीऑक्सीडेंट शरीर में मुक्त कणों को निष्क्रिय करके प्रोटीन, वसा और डीएनए को नुकसान से बचाते हैं। हालांकि, बाँस की कोपलों को काटने के बाद उनके पोषक तत्वों में कमी आने लगती है और यह कमी समय के साथ बढ़ती जाती है। अध्ययन में यह पाया गया कि ताज़ी और कोमल बाँस की कोपलों के ऊपरी हिस्से (टिप) में एंटीऑक्सीडेंट की मात्रा ज्यादा होती है, जबकि निचले हिस्से में यह कम होती है। इसलिए, पोषण के लिहाज से बाँस की कोपलों का ऊपरी हिस्सा ज्यादा फायदेमंद माना जा सकता है। बाँस की कोपलें स्वाद और सेहत के लिए फायदेमंद होती हैं, लेकिन इनमें प्राकृतिक रूप से सायनोजेनिक ग्लाइकोसाइड्स (जैसे टैक्सिफिलिन) पाए जाते हैं। ये तत्व विघटन पर जहरीली सायनाइड आयन (CN^-) गैस छोड़ते हैं। शोध के अनुसार, बाँस की कोपलों के सिरे में यह जहरीला आयन अधिक मात्रा में होता है। हालाँकि, इसकी मात्रा बाँस की प्रजाति और जलवायु पर भी निर्भर करती है, लेकिन इसकें सिरे में उच्च सांद्रता की प्रवृत्ति फिर भी बनी रहती है। ताज़ी बाँस की कोपलों में HCN का स्तर 0.05% से 0.3% तक हो सकता है, जबकि अपरिपक्व सिरों में यह 0.8% तक पहुँच सकता है। इन्हें उबालकर पकाने से यह जहरीला तत्व काफी कम हो जाता है, जिससे कोपलें खाने के लिए सुरक्षित बन जाती हैं। मनुष्यों के लिए 0.5–3.5 मिलीग्राम प्रति किलोग्राम शरीर के वजन के हिसाब से HCN की मात्रा खतरनाक हो सकती है। यानी अगर कोई व्यक्ति ताज़ी कोपलों से 50–60 मिलीग्राम सायनाइड खा लेता है, तो यह उसकें लिए हानिकारक हो सकता है। उबालने के बाद बाँस की कोपलों में एंटीऑक्सीडेंट और सायनोजेनिक यौगिक की मात्रा लगभग आधी रह जाती है। इसलिए, उबालने से कोपलें न सिर्फ सुरक्षित बनती हैं, बल्कि स्वास्थ्य के लिए भी बेहतर हो जाती हैं।

अतः ये कहा जा सकता है कि पूर्वोत्तर भारत में बाँस की कोपलें ना केवल भोजन का हिस्सा हैं, बल्कि यह वहाँ की संस्कृति, अर्थव्यवस्था और सतत कृषि प्रणाली का महत्त्वपूर्ण हिस्सा भी हैं। अपने विशेष स्वाद और स्वास्थ्य लाभों के कारण यह पूर्वोत्तर राज्यों के पारंपरिक व्यंजनों में भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। इन्हें तरकारी, अचार और पारंपरिक व्यंजनों में प्रयोग किया जाता है। इसकें अलावा, यह स्थानीय अर्थव्यवस्था को भी सहारा देती हैं। जैसे-जैसे दुनिया सतत खाद्य स्रोतों की ओर बढ़ रही है, बाँस की कोपलें एक ऐसा विकल्प प्रस्तुत करती हैं जो पर्यावरण, संस्कृति और अर्थव्यवस्था के बीच संतुलन बनाए रखती हैं।

आभार:

लेखक प्रतिपूरक वनरोपण निधि प्रबंधन एवं योजना प्राधिकरण (कंपनशेटरी एफ़ोरेस्टेशन फ़ंड मैनेजमेंट ऐंड प्लानिंग अथॉरिटी, CAMPA), पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय (MoEF&CC), भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् (ICFRE) और भा.वा.अ.शि.प.- वर्षा वन अनुसंधान संस्थान (ICFRE-RFRI)

के निदेशक का हृदय से आभार व्यक्त करते हैं, जिन्होंने इस शोध कार्य के दौरान वित्तीय सहायता प्रदान कर इस अध्ययन को संभव बनाया।

****

रोडोडेंड्रोन निवियम : हिमालय की खूबसूरती की एक झलक

प्रेम चंद ज्ञानी[1], रेखा माहातो[1], पूजा यादव[2], सोनकेश्वर शर्मा[1] , विश्वनाथ शर्मा[1]
[1]भा.वा.अ.शि.प.- वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट
[2]बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, बिहार

रोडोडेंड्रोन निवियम, जिसे स्थानीय भाषा में कहा जाता है "हिउन पाते गुरांस", हिमालय का एक सुंदर फूलदार पौधा है, जो मुख्यतः भारत के सिक्किम क्षेत्र में पाया जाता है। यह सिक्किम का राज्य वृक्ष है और इसका सांस्कृतिक और पारिस्थितिक महत्त्व अत्यधिक है। इसकें आकर्षक फूल और विशेष लक्षण इसे हिमालयी वनस्पति का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा बनाते हैं। दुर्भाग्यवश, यह प्रजाति आवास हानि और जनसंख्या में गिरावट जैसे कई खतरों का सामना कर रही है, जिसकें चलते इसकें संरक्षण को प्राथमिकता दी जा रही है।

वानस्पतिक विवरण

रोडोडेंड्रोन निवियम, जिसे स्नो-लीव्ड रोडोडेंड्रान भी कहा जाता है, 6 मीटर तक ऊंचाई वाला और अत्यधिक शाखाओं वाला वृक्ष है। इसकी छाल धूमिल भूरे रंग की होती है और छोटे टुकड़ों में छिलती है। इसकी युवा शाखाएं और तने सफेद रेशेदार बालों से ढके होते हैं। इसकें पेटियोल 1.0-1.8 सेमी लंबे और सफेद रोएंदार होते हैं। पत्तियाँ पतली भालाकार से अण्डाकार लगभग 8-20 सेमी लंबी और 2.8-6.00 सेमी चौड़ी होती हैं।

पत्तियों के ऊपरी भाग गहरे हरे और चिकने होते हैं, जबकि निचला भाग दोहरी परत वाले चांदी जैसे या भूरे आवरण से ढका होता है। पुष्पगुच्छ 15-25 फूलों से सघन रूप से भरा होता है। फूल बैंगनी या हल्के गुलाबी रंग के होते हैं। यह प्रजाति अप्रैल से मई तक फूल देती है, और इसकें फल सितंबर से अक्टूबर के बीच पकते हैं (गोगोई, 2022)।

चित्र 1: उत्तर सिक्किम में *रोडोडेंड्रॉन निवियम* का पौधा (ज्ञानी, 2024)

चित्र 2: फूल आने के समय *रोडोडेंड्रॉन निवियम* (ग्रिमशॉ, 2018)

चित्र 3: परिपक्व कैप्सूल के साथ *रोडोडेंड्रॉन निवियम* (ज्ञानी, 2024)

विस्तार

यह प्रजाति सिक्किम के क्यांगनोसला अल्पाइन अभयारण्य, शिंगबा *रोडोडेंड्रोन* अभयारण्य, ऊपरी ड्ज़ोंगु और याकचे क्षेत्रों के साथ-साथ अरुणाचल प्रदेश और भूटान में पाई जाती है। यह प्रजाति 2,900 से 3,700 मीटर की ऊंचाई पर मिलती है (गोगोई, 2022)।

महत्त्व

रोडोडेंड्रोन का बागवानी और औषधीय महत्त्व अत्यधिक है। इसे सुंदरता के लिए बगीचों, सड़कों और गमलों में सजावट के लिए उपयोग किया जाता है। पारंपरिक रूप से, इस पौधे का उपयोग कई रोगों के उपचार में किया जाता है। इसकें फूलों का उपयोग अचार, जूस, जैम, सिरप और स्क्वैश बनाने में किया जाता है और साथ ही दस्त, सिरदर्द, सूजन, बैक्टीरिया और फंगल संक्रमण के इलाज के लिए भी किया जाता है (कुमार, 2019)।

संरक्षण की आवश्यकता

रोडोडेंड्रोन अब कई खतरों का सामना कर रहे हैं, जिनमें मुख्य रूप से आवास विनाश, जलवायु परिवर्तन और मानवीय गतिविधियां शामिल हैं। उच्च हिमालयी क्षेत्रों में इसकें प्राकृतिक आवास को वनों की कटाई, पर्यटन दबाव और सड़क निर्माण जैसी गतिविधियों के कारण नुकसान हो रहा है। इनविट्रो प्रोपेगेशन और ऊतक संवर्धन तकनीकों को इस प्रजाति को इसकें प्राकृतिक आवास के बाहर संरक्षित करने के लिए संभावित तरीकों के रूप में देखा जा रहा है (सिंह, 2013)।

निष्कर्ष

रोडोडेंड्रोन निवियम न केवल एक सुंदर फूलदार पौधा है बल्कि हिमालयी पारिस्थितिकी तंत्र का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा भी है। इसकें संरक्षण के लिए प्रभावी रणनीतियों को लागू करना आवश्यक है। इस प्रजाति और अन्य *रोडोडेंड्रोन* प्रजातियों को बचाना हिमालय की जैव विविधता, सांस्कृतिक धरोहर और पारिस्थितिक संतुलन को बनाए रखने में सहायक होगा।

संदर्भ

1. गोगोई, आर., शेर्पा, एन., माओ, ए. ए., राय, एस., एवं गुप्ता, एस. (2022). सिक्किम और दार्जिलिंग हिमालय के *रोडोडेंड्रोन*: एक चित्रित विवरण। वनस्पति सर्वेक्षण भारत, पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार.
2. बैनर्जी, ए., चक्रवर्ती, पी., एवं बंधोपाध्याय, आर. (2019). सिक्किम हिमालय जैव-विविधता हॉटस्पॉट में तात्कालिक संरक्षण आवश्यकताएँ। *बायोडायवर्सिटी*, 20(2-3), 88-97.
3. तिवारी, ओ. एन., एवं चौहान, यू. के. (2006). सिक्किम हिमालय में *रोडोडेंड्रोन* संरक्षण। *करेंट साइंस*, 532-541.
4. कुमार, वी., सूरी, एस., प्रसाद, आर., गत, वाय., सांगमा, सी., जाखू, एच., एवं शर्मा, एम. (2019). *रोडोडेंड्रोन* के जैव सक्रिय यौगिक, स्वास्थ्य लाभ और उपयोग: एक विस्तृत समीक्षा। कृषि और खाद्य सुरक्षा, 8, 1-7.

5. सिंह, के. के., राय, एल. के., एवं नेपाल, एल. एच. (2013). *रोडोडेंड्रोन निवियम* हुक एफ (सिक्किम का राज्य वृक्ष) के इन विट्रो प्रसार की एक संकटग्रस्त *रोडोडेंड्रोन* प्रजाति का सिक्किम हिमालय। *सिबटेक जर्नल ऑफ बायोटेक्नोलॉजी*, 2, 53-60.
6. ग्रिमशॉ, जे. (2018). *रोडोडेंड्रॉन निवियम* अपने पूर्ण रूप में, आरएचएस गार्डन हार्लो कार, नॉर्थ यॉर्कशायर, मई 2018 [फोटोग्राफ़]. ट्रीज एंड श्रब्स ऑनलाइन.
7. ज्ञानी, पी. सी. (2024). परिपक्व कैप्सूल के साथ *रोडोडेंड्रॉन निवियम* पौधा [फोटोग्राफ़]. निजी संग्रह.
8. ज्ञानी, पी. सी. (2024). उत्तरी सिक्किम में *रोडोडेंड्रॉन निवियम* पौधा [फोटोग्राफ़]. निजी संग्रह.

****

दिमा हसाओ, असम : आदिवासी समुदायों में बाँस के बहुमुखी उपयोग की अद्भुत परंपरा

मुना तामांग
भा.वा.अ.शि.प.- वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट

परिचय

बाँस, जिसे 21वीं सदी का "हरा सोना" कहा जाता है और आमतौर पर 'गरीबों की लकड़ी' के रूप में जाना जाता है (हुसैन 2022), उत्तर पूर्व भारत के जनजातीय समुदायों के जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। बाँस को एक महत्त्वपूर्ण गैर-लकड़ी वन उत्पाद के रूप में माना जाता है और यह गृह उद्यानों का अभिन्न हिस्सा है, जो ग्रामीणों को विभिन्न प्रकार की वस्तुएं और सेवाएं प्रदान करता है (नाथ एट अल., 2011)। कई पीढ़ियों से, बाँस ने उत्तर पूर्व भारत में सामाजिक, सांस्कृतिक और पारिस्थितिक रूप से महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है (बसुमातारी एट अल., 2015)। अंतर्राष्ट्रीय बाँस और रतन नेटवर्क (INBAR) ने पहचाना है कि बाँस संसाधनों के प्रभावी उपयोग से कम से कम छह संयुक्त राष्ट्र सतत विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने में मदद मिल सकती है (तामांग एट अल., 2022)। दिमा हासाओ जिले में जहां गरीबी और भौगोलिक अलगाव प्रमुख चुनौतियाँ हैं, बाँस एक स्थायी और बहुमुखी संसाधन प्रदान करता है जो जनजातीय आबादी की कई सामाजिक-आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करता है।

भारत में कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय ने 'राष्ट्रीय बाँस मिशन' लागू किया है, जिसका उद्देश्य बाँस के समग्र विकास को बढ़ावा देना है, जिसमें उपयुक्त क्षेत्रों में नए और बेहतर बाँस की किस्मों को अपनाना, बाँस की खेती का विस्तार, बाँस आधारित हस्तशिल्प का विकास और विपणन शामिल है (देव एट अल., 2019)। बाँस के विविध उपयोगों के कारण, इस क्षेत्र के किसान बाँस की खेती अपना रहे हैं। असम के मुख्यमंत्री हिमंत बिस्वा सरमा ने राज्य में आत्मनिर्भर असम के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए, दिमा हासाओ जिले के मंडेरदीसा में पहले बाँस औद्योगिक पार्क की नींव रखी है।

भारत बाँस की विविधता में चीन के बाद दूसरा सबसे समृद्ध देश है (तामांग एट अल., 2022)। भारत में लगभग 148 बाँस की प्रजातियों की रिपोर्ट है, जो 33 जेनरा और 6 विभिन्न किस्मों से संबंधित हैं (कुमारी 2019)। दिमा हासाओ जिले में कुल 32 बाँस की प्रजातियों की उपस्थिति दर्ज की गई है। इस क्षेत्र में उपयोग की जाने वाली सबसे पसंदीदा बाँस की प्रजातियाँ हैं- *बम्बुसा कचरेंसिस, बम्बुसा गरुचकुआ, बम्बुसा जैंटियाना, डेंड्रोकेलमस लॉन्गीस्पाथस, ऑक्साइटेनेंथेरा पार्विफोलिया* और *फिलोस्टाचिस मानी* (मेंधी एट अल., 2010)।

आर्थिक महत्त्व

इस क्षेत्र के जनजातीय समुदायों की आजीविका में बाँस का प्रमुख योगदान है। कई जनजातीय परिवारों के लिए बाँस की खेती और हस्तशिल्प आय के प्राथमिक स्रोत हैं (चित्र-1)। बाँस आधारित उत्पाद जैसे चटाई, टोकरियाँ, असबाब और यहां तक कि खाद्य पदार्थों के रूप में बाँस की कलियों का उत्पादन उन्हें सतत कमाई का साधन प्रदान करता है (चित्र-2)। यह कई गरीब जनजातीय परिवारों की आर्थिक स्थिति को सुधारने की क्षमता रखता है।

चित्र 1: महिलाएं बाँस से बने हस्तशिल्प द्वारा हथकरघा तैयार करने में संलग्न।	चित्र 2: बाँस की कोपलों का व्यापक रूप से बाजारों में उपभोग के लिए बिक्री।

चित्र 3: बाँस से बना दीवार।

सांस्कृतिक और सामाजिक महत्त्व

बाँस उत्तर पूर्व भारत के जनजातीय समुदायों की सांस्कृतिक संरचना में गहराई से जुड़ा हुआ है। इसे उनके दैनिक जीवन के विभिन्न पहलुओं में उपयोग किया जाता है, जैसे घर, उपकरण, अनुष्ठान और समारोहों में। उदाहरण के

लिए, बाँस के घर और दीवारें इस क्षेत्र में एक आम दृश्य हैं (चित्र-3)। सामग्री की मजबूती, लचीलापन और उपलब्धता इसे उन घरों के निर्माण के लिए आदर्श बनाते हैं जो क्षेत्र की भारी बारिश और भूकंप को सहन कर सकते हैं।

पर्यावरणीय प्रभाव

बाँस का उपयोग न केवल जनजातीय समुदायों के लिए आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से फायदेमंद है, बल्कि पर्यावरण की दृष्टि से भी लाभकारी है। बाँस एक अत्यधिक स्थायी संसाधन है; यह तेजी से बढ़ता है और इसे काटने से पर्यावरण को महत्त्वपूर्ण क्षति नहीं पहुँचती। इसकी व्यापक जड़ प्रणाली मृदा के कटाव को रोकने में मदद करती है, जो दिमा हासाओ जिले के पहाड़ी इलाकों में महत्त्वपूर्ण है।

चुनौतियाँ और अवसर

इसकें कई फायदों के बावजूद, दिमा हासाओ जिले में बाँस उद्योग को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। संगठित बाजारों की कमी, अपर्याप्त बुनियादी ढांचे और आधुनिक प्रविधि तक सीमित पहुंच बाँस के संसाधन को अधिकतम करने में प्रमुख बाधाएँ हैं। इसकें अलावा, मूल्यवर्धन और ब्रांडिंग के अभाव के कारण जनजातीय कारीगरों को अपने उत्पादों के लिए अक्सर कम मूल्य प्राप्त होता है, जिससे वे गरीबी के चक्र में फँस जाते हैं। हालाँकि, विकास के लिए अपार संभावनाएँ हैं। राष्ट्रीय बाँस मिशन जैसी सरकारी पहलें इस क्षेत्र में बाँस उद्योग के समग्र विकास को बढ़ावा देने का लक्ष्य रखती हैं।

निष्कर्ष

दिमा हासाओ के जनजातीय लोगों के लिए बाँस केवल एक पौधा नहीं है। यह उनकी आर्थिक, सांस्कृतिक और पर्यावरणीय भलाई का आधार है। बाँस की पूरी क्षमता का उपयोग करके और उद्योग के सामने आने वाली चुनौतियों को हल करके, सबसे वंचित समुदायों के जीवन को बेहतर बनाने का एक वास्तविक अवसर है। इस प्रकार, बाँस न केवल परंपरा और लचीलापन का प्रतीक है, बल्कि एक बेहतर भविष्य की आशा का भी प्रतीक है।

संदर्भ:

- बासुमातरी ए., मिडा; एस. के., उषा, टी.; ब्रह्मा, बी. के. और गोयल ए. के. (2015). उत्तर-पूर्व भारत में खाद्य सुरक्षा, आर्थिक समृद्धि और पारिस्थितिक सुरक्षा के संभावित स्रोत के रूप में बाँस: एक अवलोकन। प्लांट बायोलॉजी में अनुसंधान 5(2).
- हुसैन आई. असम में बाँस का सामाजिक-आर्थिक महत्त्व: एक संक्षिप्त विश्लेषण.
- नाथ ए. जे.; भट्टाचार्य पी.; नंदी एस. और दास ए. के. (2011). बराक घाटी, उत्तर-पूर्व भारत की चाय जनजातियों के बीच पारंपरिक बाँस उपयोग। *बाँस विज्ञान और संस्कृति*, 24(1):35–44.
- मेंधी पी.; बोरठाकुर एस. के. और होरे डी. के. (2010). असम, भारत के उत्तर कछार हिल्स से वनस्पति संसाधन-IV: बाँस और रतन। जे *बाँस रतन*, 9(3):115-125.

- तामांग एम.; नंदी एस.; श्रीनेट आर.; दास ए. के. और पडालिया एच. (2022). पृथ्वी अवलोकन डेटा का उपयोग करके बाँस मानचित्रण: एक व्यवस्थित समीक्षा। भारतीय दूरसंवेदी समाज पत्रिका 50(11): 2055-2072.
- देव आई.; राम ए.; अहलावत एस. पी.; ध्यानी एस. के.; तिवारी आर. के.; सिंह आर.; श्रीधर के. बी.; कुमार एन.; और द्विवेदी आर. पी. (2019). बाँस: ग्रामीण अर्थव्यवस्था को बढ़ाने के लिए एक संभावित संसाधन–एक केस अध्ययन। ट्रेनिंग. व्याख्यान नोट्स 188–195.
- कुमारी पी. (2019) । भारत में बंबूसोइडिया: एक अद्यतन सूची। प्लांटे सायंटिया 1(06):99–117.

****

उत्तर-पूर्वी भारत का 'जॉय' सुगंधित वृक्ष: *मैगनोलिया चंपाका*

अमिताव रॉय, राकेश कुमार प्रजापत, प्रेम चंद झानी, कर्मा ग्याल्पो भूटिया,
अंशुमान पटेल, रेखा महतो और सत्यम बरदलै
भा.वा.अ.शि.प - वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट

मैगनोलिया चंपाका जिसे स्थानीय रूप से 'टीतासोपा' या 'चंपक' के नाम से जाना जाता है, पूर्वोत्तर भारत की सबसे आर्थिक रूप से महत्त्वपूर्ण वृक्ष प्रजातियों में से एक है, जो अपनी कीमती लकड़ी के साथ-साथ अपने फूलों की सुखद खुशबू के लिए प्रसिद्ध है, जो क्षेत्र की वन अर्थव्यवस्था और आजीविका के अवसरों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। लकड़ी का रंग जैतून के भूरे रंग का होता है, मध्यम रूप से टिकाऊ लकड़ी की श्रेणी-ए से संबंधित है। पेड़ के फूल बहुत सुगंधित, नारंगी पीले रंग के होते हैं और पूरे साल खिलते हैं। फूलों का उपयोग उनकी अत्यधिक सुगंध के लिए दुनिया के सबसे महंगे इत्र 'जॉय' में से एक बनाने के लिए भी किया जाता है और इसलिए पेड़ को 'जॉय परफ्यूम ट्री' के रूप में भी लोकप्रिय बनाया जाता है। यह प्रजाति लकड़ी की गुणवत्ता के कारण भी बहुत प्रसिद्ध है, जिसे फर्नीचर उद्योग में इसकें उपयोग के लिए अत्यधिक महत्त्व दिया जाता है। अपने पारिस्थितिक और आर्थिक महत्त्व के बावजूद, मैगनोलिया चंपाका को पूर्वोत्तर भारत में कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, जिसमें आवास की हानि, अत्यधिक दोहन और व्यवस्थित खेती के तरीकों की कमी शामिल है। मैगनोलिया चंपाका की प्राकृतिक आबादी अक्सर खंडित होती है, और इस प्रजाति को औपचारिक प्रजनन कार्यक्रमों के माध्यम से बड़े पैमाने पर पालतू नहीं बनाया गया है या सुधारा नहीं गया है। इसकें परिणामस्वरूप फूलों की उपज, सुगंध की तीव्रता और लकड़ी की गुणवत्ता जैसे गुणों में व्यापक विविधता आई है। इसलिए, इस प्रजाति को संरक्षण और आनुवंशिक सुधार के उद्देश्य से वृक्ष प्रजनकों और संरक्षणवादियों से तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है।

मैगनोलिया चम्पाका का आनुवंशिक सुधार समग्र उत्पादकता को बढ़ाने, तन्यकता के विकास और आनुवंशिक क्षमता का दोहन करने के लिए आवश्यक है। आवर्ती चयन के माध्यम से बेहतर किस्मों को विकसित करना संभव है जो स्थानीय समुदायों की विशिष्ट आवश्यकताओं को पूरा करते हैं और साथ ही इस मूल्यवान प्रजाति के संरक्षण में भी योगदान देते हैं। आनुवंशिक सुधार के प्रयास लकड़ी की उत्पादकता, बढ़े हुए बायोमास, रोग प्रतिरोधक क्षमता और पूर्वोत्तर भारत की विभिन्न जलवायु परिस्थितियों के अनुकूलता जैसे वांछनीय लक्षणों को बढ़ाने पर ध्यान केंद्रित कर सकते हैं।

वर्गीकरण

यह प्रजाति मैग्नोलियासी परिवार से संबंधित है जो एंजियोस्पर्म के सबसे आदिम परिवारों में से एक है। जीनस 'मैगनोलिया' का नाम प्रसिद्ध फ्रांसीसी वनस्पतिशास्त्री पियरे मैग्नोल के नाम पर रखा गया है, इसमें कई महत्त्वपूर्ण लकड़ी और सजावटी प्रजातियाँ शामिल हैं। इस प्रजाति को इसकें खूबसूरत नारंगी पीले फूलों के कारण 'चंपक' या 'गोल्डन चंपा' के रूप में जाना जाता है जिसका औषधीय, सुगंधित और सजावटी महत्त्व है।

पारिस्थितिकी और जनसंख्या वितरण

यह प्रजाति उच्च वर्षा और उच्च आर्द्रता पसंद करती है, वर्षा की आवश्यकता 2250-5000 मिमी तक होती है। यह प्रजाति msl से 500-1500 मीटर की ऊँचाई पर अच्छी तरह से पनपती है। यह प्रजाति मालदीव, भारत, नेपाल, चीन, म्यांमार, इंडोनेशिया, नेपाल, वियतनाम, मलेशिया, थाईलैंड और फिलीपींस में दक्षिण एशिया के विभिन्न कोनों में वितरित की जाती है। भारत में यह प्रजाति मुख्य रूप से देश के उत्तर पूर्वी क्षेत्रों जैसे असम, अरुणाचल प्रदेश, मेघालय और आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और केरल जैसे दक्षिणी भागों में वितरित की जाती है। मूल रूप से यह प्रजाति भारतीय है।

वन संवर्धन प्रबंधन

बीजों से अंकुरण में कई महीने लगते हैं, इसलिए पेड़ की स्थापना के लिए वानस्पतिक प्रसार उचित है। IBA उपचार जड़ों के लिए सबसे उपयुक्त पाया गया है। राइजोक्टोनिया सोलानी के कारण होने वाली प्रमुख बीमारी जो बरसात के मौसम में दिखाई देती है और इसलिए बीमारी के प्रकोप को कम करने के लिए स्वच्छता और सांस्कृतिक संचालन के मामले में सावधानी बरतनी चाहिए।

आर्थिक महत्त्व:

लकड़ी: लकड़ी ग्रेड-I गुणवत्ता वाले वाणिज्यिक नमी रोधी प्लाईवुड सामग्री के निर्माण के लिए बहुत उपयुक्त है। लकड़ी का उपयोग भारी पैकिंग केस, अच्छी गुणवत्ता वाले बक्से, बैटरी विभाजक और पेंसिल जैसी अन्य वस्तुओं के निर्माण के लिए भी किया जाता है। इसकी बढ़िया पॉलिश और आरा गुणवत्ता के कारण विभिन्न प्लाईवुड उद्योगों में मैगनोलिया लकड़ी की भारी मांग है। इसलिए, लकड़ी की मांग और आपूर्ति के मामले में बहुत बड़ा अंतर है, जिसकें कारण इस अंतर को दूर करने के लिए प्रजातियों के लिए आनुवंशिक सुधार की तत्काल शुरुआत की आवश्यकता है।

सुगंधित तेल: इस प्रजाति का इत्र उद्योग के लिए भी बहुत आर्थिक महत्त्व है क्योंकि इसकें फूलों में बहुत अच्छी सुगंध होती है। इस अत्यधिक सुगंध का स्रोत आवश्यक तेल है जो फूल में विभिन्न वाष्पशील यौगिकों जैसे कि फेनिल एथिल अल्कोहल, एपॉक्सी लिनालूल, मिथाइल एंथ्रानिलेट आदि के रूप में मौजूद होते हैं।

निष्कर्ष

टीतासोपा (*मैगनोलिया चम्पाका*) पूर्वोत्तर भारत की एक महत्त्वपूर्ण बहुउद्देशीय लकड़ी की प्रजाति है और इसलिए इसे संरक्षण और आनुवंशिक सुधार प्रयासों के संदर्भ में तत्काल ध्यान दिया जाना चाहिए। यह प्रजाति क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है और साथ ही कई आदिवासी आबादी की आजीविका का एक अभिन्न अंग है जो आय सृजन की संभावनाओं के लिए विशेष वृक्ष प्रजातियों पर निर्भर हैं।

****

अरिस्टोलोचिया कैथकार्टि (Aristolochia cathcartii) : एक दुर्लभ औषधीय पौधा

मिताली मैहता
भा.वा.अ.शि.प - वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट

भूमिका

जैव-विविधता संरक्षण एक कठिन कार्य है जिसमें विभिन्न वैज्ञानिक और सामाजिक चुनौतियाँ शामिल हैं। भारत 7-8% विश्व की विविधता के लिए जिम्मेदार है। भारत अपने प्राकृतिक और चिकित्सीय ज्ञान की महत्त्वपूर्ण विरासत के लिए जाना जाता है। भारत के उत्तर-पूर्व क्षेत्र विविध भू-आकृति विज्ञान से परिभाषित है, जिसमें मैदान, पठार और पहाड़ और संबद्ध घाटियाँ शामिल हैं। इसकें परिदृश्य की हरियाली, अनुकूल जलवायु परिस्थितियों, भौगोलिक और पारिस्थितिक विविधता उत्तर-पूर्व को उपमहाद्वीप के अन्य भागों से अलग बनाती है। उत्तर-पूर्व भारत में, भारत की सबसे समृद्ध पौधों की विविधता का भंडार है और यह हिमालय और इंडो-बर्मा मेंगा जैव-विविधता क्षेत्रों में से एक 'जैव-विविधता हॉटस्पॉट' है। यह क्षेत्र भारत की कुल पौधों की विविधता का लगभग 50% का समर्थन करता है और भारत की 40% स्थानिक पौधों की प्रजातियों को आश्रय देता है। इस क्षेत्र में एक बड़ी संख्या में आदिवासी लोग या जनजातियाँ भी निवास करती हैं। पारंपरिक स्वास्थ्य देखभाल प्रणाली में, विशेष रूप से आदिवासी समुदायों में पौधों का उपयोग आम है।

अरिस्टोलोचिया कैथकार्टि, एक महत्त्वपूर्ण औषधीय पौधा है। यह भारत, चीन, बांग्लादेश, म्यांमार और नेपाल में पाया जाता है। भारत में, यह पूर्वोत्तर क्षेत्र में, विशेष रूप से असम, मेघालय और सिक्किम में पनपता है। यह एक दुर्लभ, लकड़ीदार चढ़ने वाला पौधा है जिसकी भूरे रंग की कॉर्की खांचेदार छाल और लंबे 'एस' आकार के बैंगनी रंग के फूल होते हैं (छायाचित्र 1)। यह पारंपरिक रूप से कई बीमारियों के इलाज के लिए उपयोग किया जाता है, जैसे कि खाद्य विषाक्तता, यकृत विकार, पेट दर्द, मूत्रजननांगी विकार, कीट विकर्षक, सूजन और फंगल रोग, मलेरिया, डिसेंट्री, उच्च रक्तचाप, शरीर में दर्द, मूत्र पथ संक्रमण, सिरदर्द और खांसी। हालांकि पूरे पौधे का उपयोग किया जा सकता है, सबसे अधिक उपयोग किया जाने वाला हिस्सा जड़ है। यह एक समस्या पैदा करता है क्योंकि कई पौधों को प्रजनन परिपक्वता तक पहुंचने से पहले ही जंगल से सीधे उखाड़ लिया जाता है। यह पौधे के लिए एक गंभीर खतरा है।

छायाचित्र 1 : *अरिस्टोलोचिया कैथकार्टि*

चुनौतियां

अरिस्टोलोचिया की सभी प्रजातियाँ निर्यात (व्यापार) नियंत्रण आदेश, 1988 की अनुसूची की सूची-A में शामिल हैं और भारत से पौधों और उनके व्युत्पन्नों का निर्यात प्रतिबंधित है। इसकें अलावा, भारतीय वन अधिनियम के तहत आरक्षित वन से संग्रह प्रतिबंधित है। हालांकि, *अरिस्टोलोचिया कैथकार्टि* की घटती जनसंख्या एक महत्त्वपूर्ण संरक्षण चुनौती प्रस्तुत करती है। अत्यधिक उपयोग, अवैज्ञानिक संग्रहण विधियों, अवैध कटाई और अन्य मानवजनित गतिविधियों ने इस प्रजाति को अपने प्राकृतिक आवास में विलुप्ति के कगार पर धकेल दिया है। *अरिस्टोलोचिया कैथकार्टि* की आबादी की स्थिति का आकलन सर्मा और तंती (2022) द्वारा विस्तृत क्षेत्रीय सर्वेक्षण के माध्यम से किया गया था। उन्होंने पाया कि स्थानीय समुदाय द्वारा अत्यधिक शोषण के कारण, साथ ही अन्य प्राकृतिक और मानवजनित कारकों के कारण, इस पौधे की आबादी अपने प्राकृतिक आवास से तेजी से कम हो रही है। कुमार और वर्मा (2013); रे और अन्य (2022) द्वारा भी पौधे की जनसंख्या में गिरावट रिपोर्ट की गई थी। इसलिए, इसका संरक्षण भावी पीढ़ियों और शोधकर्ताओं के लिए अति आवश्यक है। वर्तमान संरक्षण प्रयासों को मुख्य रूप से इन-सिटू उपायों तक सीमित रखा गया है और कुछ ही एक्स-सिटू उपाय किए गए हैं, जो *अरिस्टोलोचिया कैथकार्टि* की जनसंख्या में गिरावट को रोकने में पर्याप्त साबित नहीं हुए हैं। इसलिए, इस प्रजाति से जुड़ी आनुवंशिक विविधता और पारिस्थितिक कार्य के अपरिवर्तनीय नुकसान को रोकने के लिए तत्काल कार्रवाई की आवश्यकता है।

समाधान

औषधीय पौधे दुनिया भर में ध्यान आकर्षित कर रहे हैं, क्योंकि ये सुरक्षित, सस्ते, निवारक और सुधारात्मक उपचारों की एक विस्तृत श्रृंखला प्रदान करते हैं, जो स्वास्थ्य के लिए उपयोगी हैं। भारत, चीन के बाद औषधीय पौधों का दूसरा सबसे बड़ा निर्यातक है (लक्ष्मी और शेखर, 2018)। परिणामस्वरूप, औषधीय पौधों पर अब उनकी बढ़ती मांग के कारण बहुत दबाव है। भारत जैसे देशों में, यह अनुमान लगाया गया है कि लगभग 80% औषधीय पौधे जंगली से एकत्र किए जाते हैं, जिससे प्राकृतिक जनसंख्या पर दबाव बढ़ता है। चूंकि प्रजातियों की विशाल विविधता है और इन संरक्षण कार्यक्रमों को लागू करने के लिए सीमित संसाधन उपलब्ध हैं, इसलिए संरक्षण के लिए प्रजातियों की प्राथमिकता, खतरे की स्थिति का आकलन और अपनाई जाने वाली सबसे उपयुक्त रणनीति बनाना आवश्यक शर्तें बन जाती हैं। इसलिए, दुर्लभ और संकटग्रस्त औषधीय पौधों का संरक्षण और खेती प्राथमिकता दी जानी चाहिए, जिसे संबंधित अनुसंधान और विकास गतिविधियों द्वारा समर्थित किया जाना चाहिए।

एक्स-सिटू संरक्षण रणनीतियां, प्राकृतिक आवास के बाहर प्रजातियों की सुरक्षा के लिए आशाजनक मार्ग प्रदान कर सकती हैं। हालांकि, एक्स-सिटू संरक्षण के सफल कार्यान्वयन के लिए प्रजाति जीवविज्ञान, प्रसार आवश्यकताओं और उसकी विशिष्ट पारिस्थितिक निशा के अनुकूल पुनर्स्थापना प्रोटोकॉल की व्यापक समझ की आवश्यकता होती है। इसकें अलावा, लोगों की जरूरतों को पूरा करने और स्थायी संरक्षण प्रयासों को संतुलित करने के लिए प्रसार प्रोटोकॉल के मानकीकरण आवश्यक हैं। हालांकि, कुछ अरिस्टोलोचिया प्रजातियों जैसे *अरिस्टोलोचिया टागाला* (*Aristolochia tagala*) और *अरिस्टोलोचिया इंडिका* (*Aristolochia indica*) के लिए मैक्रोप्रोपेगेशन प्रोटोकॉल विकसित किए गए हैं, लेकिन *अरिस्टोलोचिया कैथकार्टि* के लिए नहीं। इसलिए, अनुकूलतम प्रसार तकनीकों और खेती को विकसित करके, अनुसंधान के माध्यम से प्रभावी एक्स-सिटू संरक्षण उपायों को स्थापित करने की अवश्यकता है। इसकें अतिरिक्त, कई अध्ययनों ने दुर्लभ और संकटग्रस्त पौधों के

पुनर्स्थापन और संरक्षण में पुनर्स्थापना के महत्त्व पर जोर दिया है। इसलिए, इस प्रजाति के सफल पुनर्स्थापन के लिए एक व्यापक रणनीति विकसित करने की आवश्यकता है, जिसमें पारिस्थितिक और सामाजिक-आर्थिक कारकों दोनों पर विचार किया जाए। इस प्रकार, इन चुनौतियों का समाधान करके, हम *अरिस्टोलोचिया कैथकार्टि* के प्राकृतिक आवास में दीर्घकालिक जीवन को सुनिश्चित कर सकेंगे।

निष्कर्ष

पिछले बीस वर्षों में, औषधीय और सुगंधित पौधों में रुचि की वापसी ने कई पौधों की प्रजातियों के लिए बाजार और उत्पादन क्षमता को बढ़ावा दिया है। यह कई उच्च मूल्य वाले औषधीय पौधों की प्रजातियों की जनसंख्या में कमी के अध्ययन से स्पष्ट है। इस हानि के संभावित कारणों में आवास विशेषता, वितरण की संकीर्ण सीमा, भूमि उपयोग में व्यवधान, गैर-स्थानीय प्रजातियों का परिचय, आवास में परिवर्तन, जलवायु परिवर्तन, भारी पशुपालन, मानव जनसंख्या का विस्फोट, जनसंख्या की संकीर्णता और आनुवंशिक प्रवृत्ति शामिल हैं। भारत के चिकित्सा प्रणाली के लिए औषधीय पौधों के महत्त्व को देखते हुए, उनके संरक्षण, खेती और सतत उपयोग पर बढ़ते ध्यान की आवश्यकता है। यह महत्त्वपूर्ण है कि सभी हितधारक, जैसे नीति निर्माता, संसाधन प्रबंधक, निर्माता और उपभोक्ता, इस संसाधन के संवर्धन की आवश्यकता के प्रति संवेदनशील हों।

****

गंभीर रूप से लुप्तप्राय *एक्विलारिया खासियाना* प्रजाति के संरक्षण पर परिप्रेक्ष्य

रेखा माहातो
भा.वा.अ.शि.प.-वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट

एक्विलारिया थाइमेंलियासी परिवार से संबंधित है। एक्विलारिया जीनस पूरे एशिया में पश्चिम में भारत से लेकर पूर्व में इंडोनेशिया और उत्तर में चीन तक फैला हुआ है। भारत में, यह पूर्वोत्तर भारत के उपोष्णकटिबंधीय से लेकर उष्णकटिबंधीय वर्षावनों में फैला हुआ है। एक्विलारिया जीनस में लगभग 27 प्रजातियाँ शामिल हैं, इनमें से 13 को सुगंधित राल का उत्पादन करने के लिए पहचाना जाता है, और शेष आठ एक्विलारिया प्रजातियों की स्थिति अज्ञात है। भारत में, केवल 2 प्रजातियाँ रिपोर्ट की गई हैं यानी *एक्विलारिया मैलाकेंसिस* और *एक्विलारिया खासियाना*। अगरवुड के पौधे उच्च मूल्य की लकड़ी देते हैं। अगरवुड एक मूल्यवान, गैर-लकड़ी वन उत्पाद है जिसका उपयोग विभिन्न समाजों में औषधीय, सुगंधित, सांस्कृतिक और धार्मिक उद्देश्यों के लिए किया जाता रहा है। जब अगरवुड के पौधे बिजली गिरने, जलने या माइक्रोबियल संक्रमण जैसे प्राकृतिक कारकों से क्षतिग्रस्त होते हैं, तो सेस्क्यूटरपेन जैसे द्वितीयक मेंटाबोलाइट्स निकलते हैं। एक्विलरिया से प्राप्त राल का इत्र, धूपबत्ती और दवाओं में बहुत उपयोग होता है। विनाशकारी अगरवुड कटाई विधि के कारण, जिसमें अगरवुड उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए लकड़ी के हिस्सों को काटना शामिल है, एक्विलरिया का अक्सर जंगल में शोषण किया जाता है। अतिदोहन के कारण कुछ एक्विलरिया प्रजातियाँ वन्य जीवों और वनस्पतियों के लुप्तप्राय प्रजातियों (CITES, 1994) के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार सम्मेलन के परिशिष्ट-II के अंतर्गत हैं। वर्ष 1848-1851 के दौरान, हुकर और थॉमसन ने खासी पहाड़ियों से एक्विलरिया खासियाना के नमूने एकत्र किए। इस संग्रह के आधार पर, हॉलियर (1922) ने पहली बार एक्विलरिया खासियाना का वर्णन किया, जिसे मेघालय के लिए स्थानिक माना जाता है। बीएसआई द्वारा किए गए एनडीएफ सर्वेक्षण के अनुसार, यह प्रजाति असम के डिब्रूगढ़ में जॉयपुर रिजर्व फॉरेस्ट में भी मौजूद है। राज्य से 74 साल तक गायब रहने के बाद इसे मेघालय के मौसिनराम क्षेत्र से भी पुनः खोजा गया है। मेघालय में पाया जाने वाला यह पौधा हरिदासन और राव (1985) द्वारा "दुर्लभ" माना गया है। मेघालय को इंडो-बर्मा हॉटस्पॉट के रूप में जाना जाता है, जिसमें एडैफिक, फिजियोग्राफ़िक और जलवायु परिस्थितियों में भिन्नता के कारण वन प्रकारों के वितरण की उच्च रेंज है। इस प्रजाति को IUCN (2016) के अनुसार गंभीर रूप से लुप्तप्राय (CR) के रूप में नामित किया गया है, क्योंकि यह वर्गीकरण मानदंडों में फिट बैठता है। मेघालय के खासी हिल्स में पहले के सर्वेक्षणों में इस प्रजाति के केवल नौ व्यक्तियों (एक परिपक्व और आठ अपरिपक्व) के अस्तित्व का पता चला है, जो मौसिनराम के मावकासैन क्षेत्र में पाए गए थे। यह सदाबहार पेड़ या झाड़ी है, ऊंचाई लगभग 5 मीटर है। मानव द्वारा अत्यधिक दोहन, आक्रामक प्रजातियों का आक्रमण, प्राकृतिक संसाधनों पर बढ़ता दबाव, आवास का नुकसान, विखंडन और जलवायु परिवर्तन जैव-विविधता के लिए खतरा पैदा करते हैं। प्रजातियों की अविश्वसनीय रूप से कम आबादी का आकार मनुष्यों द्वारा की गई गड़बड़ी के कारण हो सकता है, जिससे आवास का क्षरण होता है। इसकी छोटी आबादी का एक और कारण भर्ती पर प्रतिबंध या अंकुरों के पनपने में असमर्थता हो सकती है। सितंबर पहला महीना था जब इस प्रजाति को फल देते हुए देखा गया था, और बीज जल्द ही शुष्क मौसम के संपर्क में आ गए, जो अक्टूबर से फरवरी तक बना रहा। नमी का तनाव मुख्य पर्यावरणीय चर में से एक पाया गया है जो प्राकृतिक पुनर्जनन को रोकता है। यह पौधों की प्रजातियों की आबादी को भी कम रखता है, जैसा कि उस विशिष्ट क्षेत्र में विभिन्न स्थानिक और कमजोर प्रजातियों की कम आबादी से स्पष्ट होता है। इसकें अलावा,

फरवरी और मार्च के महीनों के दौरान क्षेत्र में अक्सर होने वाली जंगल की आग बीजों और पौधों को उजागर करती है। पौधों की जैव-विविधता के नुकसान का पर्यावरण पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। इसलिए, जैव-विविधता में सुधार के लिए अलग-अलग राष्ट्रीय और साथ ही अंतर्राष्ट्रीय संरक्षण दृष्टिकोण हैं। इसलिए, प्रजातियों का संरक्षण करना महत्त्वपूर्ण है। जनसंख्या संख्या के अधिक सटीक अनुमान और प्रजातियों की भौगोलिक सीमा का पता लगाने के लिए, एक संपूर्ण सर्वेक्षण आवश्यक है जो प्रजातियों के लिए तत्काल संरक्षण की आवश्यकता को भी इंगित करता है। पहले के अध्ययन ज्यादातर टैक्सोनॉमिक रिसर्च के साथ-साथ खतरे के विश्लेषण पर आधारित थे, लेकिन प्रजातियों के संरक्षण के संदर्भ में कोई भी कार्रवाई अभी तक नहीं की गई है। इन-सीटू संरक्षण के साथ-साथ सूक्ष्म प्रसार का उपयोग करते हुए एक्स-सीटू संरक्षण इसे विलुप्त होने से बचाने के उपाय होंगे।

****

मोलाई कथोनी आरक्षित वन : असम की महान हरित दीवार

तारा कुमारी[1] एवं अजय कुमार[2]
[1]भा.वा.अ.शि.प.-वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट
[2]भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् (मुख्यालय), देहरादून

प्रस्तावना

कल्पना कीजिए एक ऐसे जंगल की जिसे एक व्यक्ति ने अकेले ही चार दशकों से अधिक समय तक पेड़-पेड़ पोषित करके बनाया, और बंजर भूमि को एक समृद्ध पारिस्थितिकी तंत्र में बदल दिया। यह असम, भारत में ब्रह्मपुत्र नदी के तट पर स्थित 'मोलाई वन' की कहानी है- प्रकृति की अदम्य शक्ति और एक व्यक्ति की अडिग निष्ठा का जीवंत उदाहरण।

वन की यात्रा

जुलाई 2024 में, मैंने इस प्रसिद्ध जंगल की यात्रा पर निकलने का निर्णय लिया। लेकिन, किस्मत को कुछ और ही स्वीकार था; महान ब्रह्मपुत्र नदी में बाढ़ आ गई थी, जिससे जंगल तक जाने वाला एकमात्र रास्ता भी अवरुद्ध हो गया। इसकें बावजूद, किस्मत ने मुझपर एक और तरीके उदारता दिखायी - मुझे "फॉरेस्ट मैन ऑफ इंडिया," श्री जाधव पायेंग से मिलने का असाधारण अवसर प्राप्त हुआ, जो इस अद्भुत जंगल के प्रेरणादायक व्यक्ति हैं।

उनकी विनम्रता उनके महान कार्यों के विपरीत थी, लेकिन उनके शब्दों में प्रकृति की शांत शक्ति की गूंज थी। उन्होंने मुझसे कहा, "यह इस बात पर निर्भर नहीं करता कि आप कितने पौधे लगाते हैं, यह इस पर निर्भर करता है कि आप उनकी कितनी देखरेख करते हैं।"

चित्र 1: 2024 में व्यापक पुनर्स्थापन प्रयासों के बाद हुए परिवर्तन से 1985 में मोलाई बालूघाट की बंजर और खाली भूमि की तुलना।

मोलाई वन की उत्पत्ति

मोलाई वन आज 550 हेक्टेयर से अधिक क्षेत्र में फैला हुआ है, लेकिन इसकी शुरुआत 1979 में हुई एक विनाशकारी घटना से जुड़ी है, जब बाढ़ और कटाव ने इस भूमि को उजाड़ना शुरू कर दिया था। इस विनाश से प्रभावित होकर, पायेंग, जो उस समय एक किशोरावस्था में थे, ने माजुली द्वीप पर पौधे लगाना शुरू किया। 1979

से अगले चार दशकों के दौरान, पायेंग और उनके वृक्षारोपण ने उस बंजर क्षेत्र की मृदा को बदलने में सफलता प्राप्त की। पायेंग ने एक जंगल तैयार किया, जिसमें पेड़ों ने 550 हेक्टेयर के इस बालूघाट को एक हरे-भरे जंगल में परिवर्तित कर दिया, जो विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों और जीव-जंतुओं का घर बन गया। असम राज्य वन विभाग को पायेंग के इस जंगल के बारे में 2008 में तब पता चला, जब जंगली हाथियों का एक झुंड वहां भटककर पहुंचा। उनके बिना किसी सहायता के किए गए प्रयासों की सराहना में, असम सरकार ने इस जंगल का नाम 'मोलाई कथोनी बाड़ी' रखा, जो पायेंग के उपनाम 'मोलाई' के नाम पर है। तब से उनकी सामूहिक प्रयासों का एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत हुआ है, जो दिखाता है कि सामुदायिक प्रयासों से बड़े बदलाव लाए जा सकते हैं। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय (JNU), जो भारत के प्रमुख शैक्षणिक संस्थानों में से एक है, ने उन्हें 'फॉरेस्ट मैन ऑफ इंडिया' की उपाधि दी है। किसी भी शैक्षणिक डिग्री से वंचित होने के बावजूद, पायेंग ने वैज्ञानिक समुदाय को प्रकृति के संरक्षण के लिए जमीनी स्तर के तरीकों पर जोर देने के लिए प्रेरित किया है। यह एक ऐसी सफलता की कहानी है जिसका अनुसरण पूरी दुनिया कर सकती है।

मोलाई वन का महत्त्व

मोलाई वन केवल एक स्थानीय घटना नहीं है; यह पर्यावरणीय पुनर्स्थापन का प्रतीक है। एक ऐसी दुनिया में जहां वनों की कटाई और जलवायु परिवर्तन की चुनौतियाँ हैं, यह वन आशा की किरण प्रस्तुत करता है, यह दर्शाता है कि व्यक्तिगत प्रयास भी एक बड़ा बदलाव ला सकते हैं। यह जंगल माजुली द्वीप, जो दुनिया का सबसे बड़ा नदी द्वीप है, पर कटाव और बाढ़ के प्रभाव को कम करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

इसकें अलावा, मोलाई वन जैव-विविधता के लिए एक महत्त्वपूर्ण निवास स्थान है। यहाँ बढ़ती हाथियों की आबादी और देशी प्रजातियों की वापसी इस जंगल की पारिस्थितिक सफलता को दर्शाती है। यह दिखाता है कि पारिस्थितिक तंत्रों को संरक्षित करने में सामुदायिक संरक्षण कितना महत्त्वपूर्ण है।

एक खोया हुआ अवसर, फिर भी एक संतोषजनक मुलाकात

हालांकि बाढ़ग्रस्त नदी ने मुझे स्वयं जंगल में प्रवेश करने से रोक दिया, लेकिन श्री जाधव पायेंग से मिलना उतना ही समृद्ध अनुभव था। उनकी कहानी सिर्फ पेड़ लगाने की नहीं है, बल्कि यह अदम्य मानवीय आत्मा और प्रकृति के साथ उसकें गहरे संबंध की कहानी है। जब वे मेंरे साथ नदी के किनारे चल रहे थे और अपना दृष्टिकोण साझा कर रहे थे, तब मुझे एहसास हुआ कि मोलाई वन पृथ्वी के साथ-साथ उनकी आत्मा का भी प्रमाण है।

तथ्य पत्रक

- कुछ वन्यजीव विशेषज्ञों के अनुसार, मोलाई वन अब दुनिया के 80% प्रवासी पक्षियों को आकर्षित करता है।
- मोलाई वन अब हिरण और खरगोशों की कई प्रजातियों के साथ-साथ बंदरों और कई प्रकार के पक्षियों का घर है, साथ ही में यहाँ बड़ी संख्या में गिद्ध भी रहते हैं।
- लगभग 100 हाथियों का एक झुंड हर साल नियमित रूप से जंगल का दौरा करता है और आमतौर पर लगभग छह महीने तक रहता है।

- जंगल में हजारों पेड़ हैं, जिनमें arjun (*Terminalia arjuna*), Pride of India (*Lagerstroemia speciosa*), royal poinciana (*Delonix regia*), silk trees (*Albizia procera*), moj (*Archidendron bigeminum*) और cotton trees (*Bombax ceiba*) मुख्य प्रजातियाँ हैं।
- आज मोलाई कथोनी लगभग 250 परिवारों, जो वन के आसपास 10 से 12 झोपड़ियों के कई समूहों में रहते हैं, को सहारा देता है।

चित्र 2: 'भारत के वनपुरुष' जादव पायेंग के साथ असम राज्य वन विभाग के सदस्यों की मुलाकात, जिसमें मोलाई वन में चल रहे संरक्षण प्रयासों पर चर्चा की गई।

आभार: इस यात्रा वृतांत में को कलमबद्ध करने और इसका हिन्दी अनुवाद करने में श्री अजय कुमार, वैज्ञानिक डी, ग्रीन क्रेडिट सेल, भा.वा.अ.शि.प. (मुख्यालय), देहरादून ने सहायता प्रदान की है।

****

हेलिकोनिया की रंगीन दुनिया: उष्णकटिबंधीय आश्चर्यों का अनावरण

अंकुर ज्योति सइकीया और प्रदीप कुमार हजारिका
भा.वा.अ.शि.प.-वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट

पृष्ठभूमि

कल्पना करें कि आप एक घने उष्णकटिबंधीय वन में चल रहे हैं, जहां रंगीन फूल और विदेशी सुगंध आपको आकर्षित कर रहे हैं। इस वनस्पति की दुनिया में एक पौधा अपनी अद्वितीय सुंदरता और वास्तुकला के लिए प्रसिद्ध है: हेलिकोनिया। लगभग 200 प्रजातियों के साथ, जो उष्णकटिबंधीय अमेरिका और प्रशांत के कुछ हिस्सों में फैली हुई हैं, ये पौधे अपने अनोखे फूलों और पारिस्थितिक महत्त्व के लिए वनस्पति विज्ञानियों और बागवानों को आकर्षित करते हैं। इस लेख में, हम हेलिकोनिया की दुनिया का अन्वेषण करेंगे, उनके इतिहास, शारीरिक विशेषताओं, पारिस्थितिक भूमिकाओं और सांस्कृतिक महत्त्व को उजागर करते हुए।

हेलिकोनिया का संक्षिप्त इतिहास

हेलिकोनिया एकल परिवार हेलिकोनियासी का हिस्सा है, जिसे पहले केले के परिवार (मुसेसी) के तहत वर्गीकृत किया गया था, लेकिन अब जिंजिबेरेल्स के क्रम में एक अलग परिवार के रूप में मान्यता प्राप्त है। "हेलिकोनिया" नाम प्राचीन ग्रीस के माउंट हेलिकॉन से लिया गया है, जो पौराणिक रूप से म्यूज का घर है, जो इन पौधों की कलात्मक और प्रेरक प्रकृति को दर्शाता है।

छवि 1: *हेलिकोनिया सिटाकोरम* (तोता हेलिकोनिया)

शारीरिक विवरण: प्रकृति की कलाकृति

हेलिकोनिया हर्बेसियस पौधे हैं जो 0.5 से लेकर लगभग 4.5 मीटर तक ऊंचे हो सकते हैं, जो प्रजाति पर निर्भर करता है। उनके पत्ते लंबे और अंडाकार होते हैं, जो अक्सर केले या बर्ड-ऑफ-पैराडाइज पौधों के पत्तों की तरह दिखते हैं, लेकिन व्यवस्था और रंग में अलग होते हैं। पत्ते हरे, मैरून या मोमी कोटिंग वाले हो सकते हैं और आमतौर पर तने के साथ एक विशिष्ट पैटर्न में व्यवस्थित होते हैं।

चित्रण 1: हेलिकोनिया पौधों के पत्ती व्यवस्था और संरचना का एक आरेख।

हेलिकोनिया की सबसे आकर्षक विशेषता उनकी फूलों की व्यवस्था है, जिसमें रंगीन, मोमी ब्रैक्ट्स होते हैं जो छोटे असली फूलों का समर्थन करते हैं। ये ब्रैक्ट्स लाल, नारंगी, पीले या हरे रंग के हो सकते हैं और अक्सर लटकती या खड़ी व्यवस्था में होते हैं। इन ब्रैक्ट्स के रंगीन रंग और अनोखे आकार ने हेलिकोनिया को बागवानों और फूल व्यवसायियों के बीच एक लोकप्रिय पसंद बना दिया है।

पारिस्थितिक भूमिका: उष्णकटिबंधीय जीवन का समर्थन

हेलिकोनिया अपने पारिस्थितिक तंत्र में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, विशेष रूप से गीले नियोट्रोपिकल वनों के निचले हिस्से में। वे निम्न और मध्य ऊंचाइयों पर प्राथमिक फूलों के घटक हैं, जो अपने अमृत से भरपूर फूलों के साथ ह्यूमिंगबर्ड जैसे परागणकों को आकर्षित करते हैं। हेलिकोनिया के फल पकने पर नीले-बैंगनी रंग के होते हैं और मुख्य रूप से पक्षियों द्वारा वितरित किए जाते हैं, जो उनके आवासों में बीज वितरण में योगदान करते हैं।

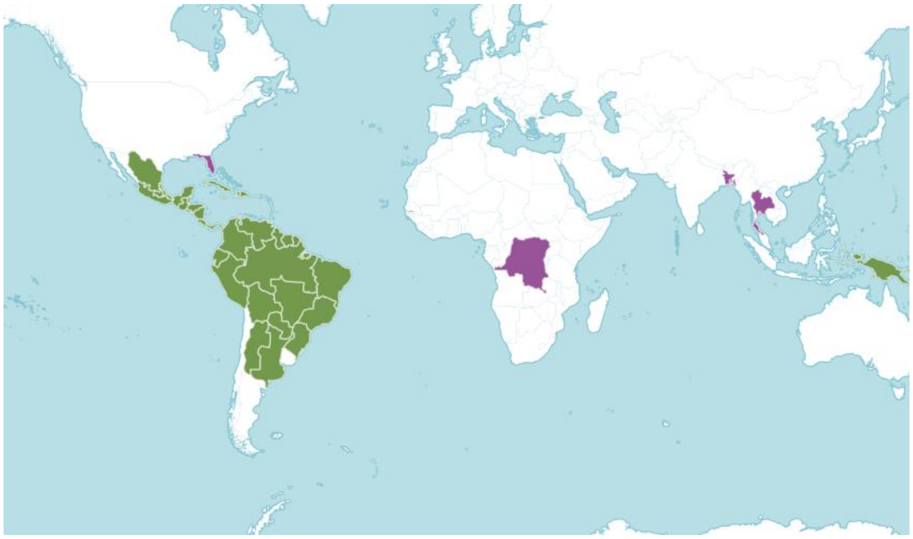

मानचित्र 1: हेलिकोनिया प्रजातियों के वितरण का एक मानचित्र, जो उष्णकटिबंधीय अमेरिका और प्रशांत द्वीपों को दर्शाता है।

सांस्कृतिक और बागवानी महत्त्व

हेलिकोनिया को उनके सजावटी मूल्य के लिए व्यापक रूप से उगाया जाता है, जो उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में परिदृश्य पौधों के रूप में और फूल व्यवसाय में काटने वाले फूलों के रूप में होता है। उनके रंगीन रंग और अनोखे आकार उन्हें बागवानी और फूलों की व्यवस्था के लिए एक लोकप्रिय पसंद बनाते हैं। हालांकि, उनकी ठंड के प्रति संवेदनशीलता उन्हें शीतोष्ण जलवायु में उगाने को सीमित करती है, जिसकें लिए उन्हें कंटेनरों या ग्रीनहाउस में उगाने की आवश्यकता होती है।

तालिका: लोकप्रिय हेलिकोनिया प्रजातियों की सूची, उनके सामान्य नाम और उगाने के नोट्स।

प्रजाति	सामान्य नाम(नाम)	उगाने के नोट्स
हेलिकोनिया सिटाकोरम	तोता हेलिकोनिया, तोता फूल	आसानी से उगाया जा सकता है पूर्ण धूप पसंद करता है
हेलिकोनिया रोस्ट्राटा	लॉबस्टर क्लॉ हेलिकोनिया	उच्च आर्द्रता की आवश्यकता होती है
हेलिकोनिया स्ट्रिक्टा	लॉबस्टर क्लॉ हेलिकोनिया, फायर बर्ड	कंटेनर बागवानी के लिए उपयुक्त
हेलिकोनिया ऑरेंटियाका	नारंगी हेलिकोनिया बौना हेलिकोनिया	कॉम्पैक्ट वृद्धि छोटे स्थानों के लिए आदर्श

संरक्षण स्थिति: भविष्य की रक्षा

हेलिकोनिया की कई प्रजातियां आईयूसीएन रेड लिस्ट में असुरक्षित या डेटा अपर्याप्त के रूप में सूचीबद्ध हैं, जो इन पौधों और उनके आवासों की रक्षा के लिए संरक्षण प्रयासों की आवश्यकता को दर्शाता है। नए प्रजातियों और रूपों की निरंतर खोज से टैक्सोनोमिक अनुसंधान और संरक्षण पहलों के महत्त्व को रेखांकित किया जाता है।

निष्कर्ष

हेलिकोनिया पौधे न केवल दृश्य रूप से आकर्षक हैं, बल्कि पारिस्थितिक रूप से भी महत्त्वपूर्ण हैं, जो उनके आवासों में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उनकी अनोखी विशेषताएं और सांस्कृतिक महत्त्व उन्हें वनस्पति विज्ञानियों और उत्साही लोगों दोनों के लिए एक आकर्षक विषय बनाते हैं। जैसे ही हम इन उष्णकटिबंधीय आश्चर्यों का अन्वेषण और समझना जारी रखते हैं, यह महत्त्वपूर्ण है कि हम उनके संरक्षण को भी प्राथमिकता दें ताकि उनकी सुंदरता और पारिस्थितिक मूल्य भविष्य की पीढ़ियों के लिए संरक्षित रहे।

****

वन उपयोग और जैव-प्रवर्तनः हाल की प्रगति और चुनौतियाँ

पी. एस. श्रीकांत
भा.वा.अ.शि.प.- वन जैव-विविधता संस्थान, हैदराबाद

वन प्राकृतिक उत्पादों का एक समृद्ध स्रोत हैं, जो पौधों, जानवरों और सूक्ष्मजीवों से प्राप्त रासायनिक यौगिक होते हैं। इन प्राकृतिक उत्पादों का उपयोग विभिन्न क्षेत्रों में जैसे चिकित्सा, सौंदर्य प्रसाधन, जैव प्रौद्योगिकी, कृषि और खाद्य उद्योग में व्यापक रूप से होता है (Singh 2024)। हालाँकि, वनों से नए प्राकृतिक उत्पादों की खोज और विकास में कई चुनौतियाँ हैं, जैसे जैव-विविधता का नुकसान, वनों की कटाई, जैव-दस्युता (बायोपायरेसी) और तकनीकी सीमाएँ (Gebara et al., 2023)। वन उपयोग और जैव-प्रवर्तन में हाल की प्रगति और चुनौतियों का गहन विश्लेषण किया गया है, जिसमें भविष्य के अनुसंधान के लिए संभावित समाधानों और अवसरों की पहचान पर जोर दिया गया है।

जैव-प्रवर्तन, वन उपयोग का एक हिस्सा है, जो जैविक विविधता की खोज और नए जैव-सक्रिय यौगिकों, जीनों और उत्पादों के विकास पर केंद्रित है (Singh et al., 2023)। जैव-प्रवर्तन का कार्य शैक्षणिक शोधकर्ता, फार्मास्युटिकल कंपनियाँ, जैव प्रौद्योगिकी फर्में और स्थानीय समुदाय जैसे विभिन्न संगठनों द्वारा किया जा सकता है। जैव-प्रवर्तन से स्थानीय देशों और इन उत्पादों का उपयोग करने वालों को वैज्ञानिक ज्ञान, आर्थिक लाभ, सामाजिक लाभ, और पर्यावरण संरक्षण के रूप में लाभ मिल सकता है (Tarnowski et al., 2023)।

वन उपयोग वह प्रक्रिया है जिसमें वन संसाधनों का निष्कर्षण, प्रसंस्करण और विभिन्न उद्देश्यों के लिए उपयोग किया जाता है, जैसे लकड़ी, ईंधन, भोजन, दवा और अन्य उत्पाद। वन उपयोग स्थायी या अस्थायी हो सकता है, यह इस बात पर निर्भर करता है कि संसाधनों के निष्कर्षण और उपयोग कैसे किया जा रहा है। स्थायी वन उपयोग का मतलब है कि वनों के पर्यावरणीय, आर्थिक, और सामाजिक महत्त्व को बनाए रखते हुए भविष्य की पीढ़ियों की आवश्यकताओं को भी पूरा करने की कोशिश करना (Gbadebo & Aderounmu 2023)।

वन प्राकृतिक उत्पादों का एक विशाल और विविध भंडार प्रदान करते हैं, जिनकी अद्वितीय एवं जटिल संरचनाएँ और कार्य होते हैं। इनका उपयोग नई दवाओं, सौंदर्य प्रसाधनों, जैव प्रौद्योगिकी उत्पादों, कृषि रसायनों और खाद्य योजकों के विकास के लिए किया जा सकता है (Batra, et al., 2023; Soni, et al., 2023)। कुछ प्रसिद्ध प्राकृतिक उत्पाद जो वनों से विकसित किए गए हैं, टैक्सोल (पैसिफिक यू वृक्ष से प्राप्त कैंसर रोधी एजेंट), आर्टेमिसिनिन (स्वीट वर्मवुड पौधे से प्राप्त मलेरिया रोधी यौगिक) और एस्पिरिन (विलो वृक्ष से प्राप्त सूजन-रोधी और दर्द निवारक एजेंट) है (Frisvold 2023; Ahamd et al., 2023; Radovanovic, et al., 2023)।

वनों से जेनेटिक संसाधनों का भी एक समृद्ध और विविध स्रोत मिलता है, जिनका उपयोग फसलों, पशुओं और अन्य जीवों में सुधार के लिए किया जा सकता है, साथ ही नए जैव प्रौद्योगिकी उत्पादों के विकास के लिए भी किया जा सकता है जैसे एंजाइम, टीके और बायोसेंसर (Salgotra & Chauhan 2023)। उदाहरण के लिए, कुछ जेनेटिक संसाधन जो वनों से प्राप्त हुए हैं और जिनका उपयोग जैव प्रौद्योगिकी में किया गया है, वे हैं सेल्युलेज (फंगी और बैक्टीरिया से प्राप्त एंजाइम जो सेल्यूलोज को विघटित करते हैं), बीटी टॉक्सिन (बैक्टीरिया *बैसिलस*

थुरिन्जिएन्सिस से प्राप्त कीटनाशक), और ग्रीन फ्लोरोसेंट प्रोटीन (जेलिफ़िश एक्वोरिया विक्टोरिया से प्राप्त मार्कर)।

वन पारंपरिक ज्ञान का भी एक मूल्यवान स्रोत होते हैं, जिनका उपयोग नए प्राकृतिक उत्पादों और जैव प्रौद्योगिकी उत्पादों की खोज और विकास के लिए मार्गदर्शन या प्रेरणा के रूप में किया जा सकता है (Dos et al., 2023; Samanta et al., 2023; Dubey et al., 2023) । उदाहरण के लिए मलेरिया के लिए सिनेकोना की छाल का उपयोग (जिससे कुनैन का पृथक्करण हुआ), डायबिटीज और कैंसर के लिए गुलाबी पेरीविंकल का उपयोग (जिससे विनब्लास्टिन और विनक्रिस्टिन का पृथक्करण हुआ), और विभिन्न उद्देश्यों के लिए नीम के पेड़ का उपयोग (जिससे अजादिराच्टिन और अन्य यौगिकों का पृथक्करण हुआ) । हालाँकि, वन उपयोग और जैव-प्रवर्तन को कई चुनौतियों और सीमाओं का सामना करना पड़ रहा है, जैसे जैव-विविधता का नुकसान, जैव-दस्युता (बायोपायरेसी) और तकनीकी सीमाएँ (Wynberg 2023) । इन चुनौतियों और सीमाओं को पार करने के लिए और वन उपयोग और जैव-प्रवर्तन के अवसरों और संभावनाओं का लाभ उठाने के लिए एक समग्र और सहयोगात्मक दृष्टिकोण अपनाना महत्त्वपूर्ण है, जिसमें रसायन विज्ञान, जीवविज्ञान और अन्य विषयों का एकीकरण और नवाचार, साथ ही वैज्ञानिकों, नीति निर्माताओं, उद्योग और स्थानीय समुदायों की भागीदारी और सहयोग शामिल है (Aripin et al., 2023; Bakhtiari et al., 2023) । इन प्रयासों से हम यह सुनिश्चित कर सकते हैं कि वन उपयोग और जैव-प्रवर्तन सतत विकास, मानवता की भलाई, और पर्यावरण के संरक्षण में योगदान कर सकें ।

संदर्भ

- अहमद, एन., खान, आर., और अहमद, आई. जेड. (2023). *आर्टेमिसिया एनुआ* एल.: औषधीय गुणों की व्यापक समीक्षा। भारत के औषधीय और सुगंधित पौधे खंड, 2:79-92.
- एरिपिन, जेड., फ़ित्रियांटी, एन. जी., और फ़ातमासारी, आर. आर. (2023). डिजिटल नवाचार और ज्ञान प्रबंधन: अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में नवीनतम दृष्टिकोण। इंडोनेशियाई संदर्भ में एक व्यवस्थित साहित्य समीक्षा। क्रिएज़ अकादमी: विकास और सामुदायिक सेवा की पत्रिका, 1(1), 62-74.
- बख्तियारी, वी., पियाडेह, एफ., चेन, ए.एस., और बेहज़ादियन, के. (2023). शहरी बाढ़ जोखिम प्रबंधन के लिए अत्याधुनिक डिजिटल विज़ुअलाइज़ेशन तकनीकों के अनुप्रयोग में हितधारक विश्लेषण: एक महत्त्वपूर्ण समीक्षा। विशेषज्ञ प्रणालियाँ अनुप्रयोगों के साथ, 121426.
- बत्रा, बी., शर्मा, डी., बोस, डी., पार्थसारथी, वी., और सरकार, ए. (2023). समुद्री विविधता की जैव-पूर्वेक्षण और जैवसक्रिय यौगिकों के सतत उत्पादन के निहितार्थ। समुद्री एंटीऑक्सीडेंट में (पृष्ठ 27-43)। अकादमिक प्रेस.
- डॉस सैंटोस, एम.एल., चंद्रन, डी., लेजानिया, ए.एस., और दा सिल्वा, एल.ई. (2023). औषधीय पौधों का संरक्षण और सतत उपयोग। औषधीय पौधों में: जैव विविधता, जैव प्रौद्योगिकी और संरक्षण (पृष्ठ 327-341)। सिंगापुर: स्प्रिंगर नेचर सिंगापुर.
- दुबे, आर. के., शुक्ला, एस., हुसैन, जेड., और तासिन, एम. (2023). संभावित आहार पूरक के रूप में मेंडागास्कर पेरीविंकल के औषधीय और फाइटोकेमिकल प्रोफाइल की एक व्यवस्थित समीक्षा। *चाइनीज जर्नल ऑफ एप्लाइड फिजियोलॉजी*, 20230002.

- फ्रिसवोल्ड, जी. बी. (2023). जैव-विविधतासंरक्षण के लिए जैव-पूर्वेक्षण और प्रोत्साहन: पैक्लिटैक्सेल के इतिहास से सबक। 21वीं सदी में सतत संसाधन विकास में: पीटर बर्क की स्मृति में निबंध (पृष्ठ 179-206)। चैम: स्प्रिंगर इंटरनेशनल पब्लिशिंग.
- गबाडेबो, ओ. वी., और एडेरौनमु, ए. एफ. (2023). वन संसाधनों का असंवहनीय दोहन:संवहनीय वन प्रबंधन बचाव के लिए। वन उत्पादों का संवहनीय उत्पादन और उपभोग, 60.
- गेबारा, एम. एफ., रामसिलोविक-सुओमिनेन, एस., और श्मिडलेनर, एम. एफ. (2023). अमेज़न की जैव अर्थव्यवस्था में स्वदेशी ज्ञान: काम्बो मेंडिसिन के मामले के माध्यम से बायोएपिस्टेमिसाइड का अनावरण। वन नीति और अर्थशास्त्र, 154, 103012.
- राडोवानोविक, के., गवारिक, एन., और अकीमोविक, एम. (2023). सर्बियाई पारंपरिक चिकित्सा से पौधों के सूजनरोधी गुण। लाइफ, 13(4): 874.
- सालगोत्रा, आर. के., और चौहान, और बी. एस. (2023). पौधों के आनुवंशिक संसाधनों की आनुवंशिक विविधता, संरक्षण और उपयोग। जीन, 14(1):174.
- सामंत, एस. के., ओझा, ए. के., और घोष, के. (2023). नीम (*अजादिराक्टा इंडिका*) के जैव रासायनिक गुण और उत्तरी पश्चिम बंगाल के आदिवासियों द्वारा इसका उपयोग: एक संक्षिप्त समीक्षा। *यूरो. केम. बुल.*, 12(1):5434-5449.
- सिंह, के., कुमार, ए., कुमार, एस., और गैरोला, एस. (2023). फाइटोकेमिकल्स के लिए पौधों की बायोप्रोस्पेक्टिंग: दवाओं के लिए महत्त्वपूर्ण। फाइटोकेमिकल जीनोमिक्स में: प्लांट मेंटाबोलोमिक्स और मेंडिसिनल प्लांट जीनोमिक्स (पृष्ठ 69-83)। सिंगापुर: स्प्रिंगर नेचर सिंगापुर.
- सिंह, वी. (2024)। वन संसाधन। पर्यावरण और पारिस्थितिकी की पाठ्यपुस्तक में (पृष्ठ 143-153)। स्प्रिंगर, सिंगापुर.
- सोनी, आर., सुयाल, डी. सी., और मोरालेस-ओयरविड्स, एल. (संपादक) (2023). माइक्रोबियल बायोएक्टिव यौगिक: औद्योगिक और कृषि अनुप्रयोग। स्प्रिंगर नेचर.
- टार्नोव्स्की, एम. जे., वर्लिरो, जी., स्काउन, जे., फेल्प्स, ई., और गोरोचोव्स्की, टी. ई. (2023). मृदा एक ट्रांसडिसिप्लिनरी रिसर्च उत्प्रेरक के रूप में: बायोप्रोस्पेक्टिंग से बायोरेस्पेक्टिंग तक। रॉयल सोसाइटी ओपन साइंस, 10(11): 230963.
- वायनबर्ग, आर. (2023). बायोपाइरेसी: भेड़िया रोना या इक्विटी और संरक्षण के लिए एक लीवर अनुसंधान नीति, 52(2): 104674.

****

वन प्रबंधन में क्रांति: पेड़ों के लिए उन्नत जेनेटिक इंजीनियरिंग तकनीकें

प्रेम चंद ज्ञानी[1], रेखा माहातो[1], पूजा यादव[2], सोनकेश्वर शर्मा[1] , विश्वनाथ शर्मा[1]
[1]भा.वा.अ.शि.प.- वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट
[2]बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, बिहार

वन पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने, जैव-विविधता का समर्थन करने और जलवायु परिवर्तन को कम करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हालांकि, पारंपरिक प्रजनन विधियों के माध्यम से वृक्ष प्रजातियों में सुधार करना एक धीमी और जटिल प्रक्रिया है, क्योंकि इनके जीवन चक्र लंबे होते हैं और इनकी आनुवंशिक विविधता अधिक होती है। इस चुनौती से निपटने के लिए, जेनेटिक इंजीनियरिंग एक शक्तिशाली उपकरण के रूप में उभरी है, जो पेड़ों की सहनशीलता, उत्पादकता और स्थिरता को बढ़ाने में मदद कर रही है। इस लेख में उन महत्त्वपूर्ण जैव प्रौद्योगिकीय प्रगति पर चर्चा की गई है, जो वनों के आनुवंशिकी में क्रांतिकारी परिवर्तन ला रही हैं। फसलों की तुलना में, पेड़ों में दीर्घ जीवनकाल और पुनर्जनन क्षमता की कमी के कारण आनुवंशिक परिवर्तन अधिक कठिन होता है। पारंपरिक तकनीकों जैसे एग्रोबैक्टीरियम-मध्यस्थ रूपांतरण और बायोलिस्टिक तकनीकों को परिष्कृत किया गया है, जबकि नैनोपार्टिकल-सहायता प्राप्त जीन ट्रांसफर जैसी नई विधियाँ अधिक सटीक और सुरक्षित आनुवंशिक संशोधन प्रदान करती हैं।

मार्कर-रहित ट्रांसजेनिक पेड़

जेनेटिक रूप से संशोधित (GM) पेड़ों से संबंधित एक प्रमुख चिंता एंटीबायोटिक-प्रतिरोधी मार्कर जीन का उपयोग है, जो पर्यावरण और स्वास्थ्य के लिए जोखिम पैदा कर सकता है। इस समस्या के समाधान के लिए, Cre-lox और FLP-FRT जैसी साइट-विशिष्ट पुनर्संयोजन प्रणालियाँ विकसित की गई हैं, जो आनुवंशिक परिवर्तन के बाद इन मार्कर जीन को हटा सकती हैं, जिससे बायोसुरक्षा बढ़ती है। यह तकनीक सेब और खट्टे फलों जैसे वृक्षों में सफलतापूर्वक लागू की गई है, जिससे स्वच्छ आनुवंशिक संशोधन संभव हुआ है।

सटीक जीनोम संपादन (प्रिसीजन जीनोम एडिटिंग)

CRISPR-Cas9, TALENs और ज़िंक-फिंगर न्यूक्लिएज़ (ZFNs) जैसी जीनोम एडिटिंग तकनीकों के आगमन ने वृक्ष जैव प्रौद्योगिकी में क्रांति ला दी है, जिससे बिना बाहरी डीएनए जोड़े जीन में सटीक संशोधन संभव हुआ है। इन तकनीकों का उपयोग सूखा-सहिष्णु वृक्षों को विकसित करने के लिए किया गया है, जिसमें DREB जैसे तनाव-संवेदनशील जीन को संशोधित किया गया है। इसी तरह, *Bt* टॉक्सिन जीन वाले कीट-प्रतिरोधी पॉपलर विकसित किए गए हैं, जिससे कीटनाशकों पर निर्भरता कम हुई है।

जीन स्टैकिंग और आरएनए-आधारित जीन साइलेंसिंग

कई लक्षणों को एक साथ बेहतर बनाने के लिए कई जीनों को एकीकृत करने की आवश्यकता होती है। को-ट्रांसफॉर्मेशन और सीरियल ट्रांसफॉर्मेशन जैसी विधियाँ वैज्ञानिकों को एक साथ या क्रमिक रूप से कई जीन सम्मिलित करने की अनुमति देती हैं। उदाहरण के लिए, यूकेलिप्टस पेड़ों को इस तकनीक से अधिक नमक-सहिष्णुता, तेज़ वृद्धि और रोग प्रतिरोधकता जैसे गुणों के साथ संशोधित किया गया है। एक और प्रभावी तकनीक,

आरएनए इंटरफेरेंस (RNAi), अवांछित जीनों को निष्क्रिय करती है, बजाय नए जीन जोड़ने के। इस विधि का उपयोग पॉपलर पेड़ों में लिग्निन की मात्रा कम करने के लिए किया गया है, जिससे कागज निर्माण की प्रक्रिया में सुधार हुआ है। इसकें अलावा, रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के लिए रोगजनक जीनों को लक्षित किया गया है।

सिसजेनेसिस: अधिक स्वीकार्य विकल्प

जेनेटिक रूप से संशोधित जीवों (GMOs) के प्रति सार्वजनिक संदेह को दूर करने के लिए, सिसजेनेसिस और इंट्राजेनेसिस तकनीकों का उपयोग किया जाता है। इसमें केवल समान या करीबी संबंधित प्रजातियों के जीन को सम्मिलित किया जाता है, जिससे बाहरी डीएनए का उपयोग करने की आवश्यकता नहीं होती। इससे उपभोक्ताओं की स्वीकृति बढ़ती है, जबकि जेनेटिक इंजीनियरिंग के लाभ भी बरकरार रहते हैं। इसका एक प्रमुख उदाहरण सेब में स्कैब-प्रतिरोधी जीन को जोड़कर रोग-सहिष्णु किस्म का विकास करना है। यह पारंपरिक जीएम तकनीक के लिए एक वैकल्पिक समाधान प्रदान करता है, जिससे आनुवंशिक रूप से संशोधित वृक्ष सामाजिक और पर्यावरणीय रूप से अधिक स्वीकार्य बनते हैं।

भविष्य की संभावनाएँ और चुनौतियाँ

हालाँकि, जेनेटिक इंजीनियरिंग में उल्लेखनीय प्रगति हुई है, लेकिन नियम-कानून और पारिस्थितिकीय चिंताएँ अभी भी व्यापक रूप से अपनाने में बाधा बनी हुई हैं। जंगली रिश्तेदारों तक जीन प्रवाह (gene flow) और आनुवंशिक परिवर्तन की दीर्घकालिक स्थिरता जैसी संभावित समस्याओं पर और अधिक शोध की आवश्यकता है। फिर भी, प्रोटोप्लास्ट ट्रांसफॉर्मेशन और क्षणिक जीन संपादन (transient gene editing) में हुई नवीनतम खोजें इन चुनौतियों के लिए आशाजनक समाधान प्रदान करती हैं। जैसे-जैसे अनुसंधान आगे बढ़ रहा है, जेनेटिक इंजीनियरिंग वनों की पुनर्स्थापना, जलवायु परिवर्तन शमन और सतत वन प्रबंधन में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

निष्कर्ष

जेनेटिक इंजीनियरिंग वन प्रबंधन क्षेत्र में क्रांतिकारी बदलाव लाने में सक्षम है, जिससे वृक्षों की वृद्धि, सहनशीलता और औद्योगिक उपयोगिता को बढ़ाया जा सकता है। सतत वैज्ञानिक विकास के साथ, आनुवंशिक रूप से संशोधित वृक्ष वनों के पुनरुत्थान, रासायनिक इनपुट पर निर्भरता कम करने और वैश्विक लकड़ी की मांग को पूरा करने में मदद कर सकते हैं, वह भी पर्यावरण के प्रति ज़िम्मेदारी के साथ।

संदर्भ

- अलबुरके, एन., बालदाची-क्रेस्प, एफ., बाउचर, एम., कसाकुबर्टा, जे. एम., कोलोनियर, सी., एल जाज़ीरी, एम., एवं बर्गोस, एल. (2016). न्यू ट्रांसफॉर्मेशन टेक्नोलॉजीज़ फॉर ट्रीज़। बायोसेफ्टी ऑफ

फॉरेस्ट ट्रांसजेनिक ट्रीज़: इम्प्रूविंग द साइंटिफिक बेसिस फॉर सेफ ट्री डेवलपमेंट एंड इम्प्लीमेंटेशन ऑफ ईयू पॉलिसी डायरेक्टिव्स, 31-66.

- जिनेक, एम., चाइलिन्स्की, के., फॉनफारा, आई., हाउअर, एम., डूडना, जे. ए., एवं चारपेंटियर, ई. (2012). ए प्रोग्रामेबल डुअल-आरएनए-गाइडेड डीएनए एंडोन्यूक्लिएज़ इन अडैप्टिव बैक्टीरियल इम्यूनिटी। *साइंस*, 337(6096): 816-821.

****

ঔষধি গুণেৰে সমৃদ্ধ বাণিজ্যিক উদ্ভিদ

গন্ধ কচু

ইলোৰা দত্ত বৰা

বৰ্ষাৰণ্য গৱেষণা প্ৰতিষ্ঠান, যোৰহাট

ভাৰতীয়সকলে প্ৰায় ৩০০০ বছৰৰ পূৰ্বৰে পৰা শৰীৰত দেখা দিয়া বিভিন্ন ৰোগৰ চিকিৎসাৰ বাবে ঔষধি গুণ সম্পন্ন উদ্ভিদৰ পৰা দ্ৰব্য ব্যৱহাৰ কৰি আহিছে । তথ্য অনুসৰি ভাৰতত ৪০০ ৰ পৰা ৯৫২ বিধ ঔষধি গুণেৰে সমৃদ্ধ উদ্ভিদ ৰোগ নিৰ্মূলকৰণত ব্যৱহাৰ হৈ আহিছে । ইয়াৰে ৫০০ ৰো অধিক অৰুণাচল প্ৰদেশত আৰু ৯০০ ৰো অধিক প্ৰজাতি অসমত পোৱা যায় । ৰাষ্ট্ৰীয় আৰু আন্তঃৰাষ্ট্ৰীয় বাণিজ্যিক ক্ষেত্ৰখনত বিশেষ গুৰুত্ব লাভ কৰা প্ৰায় ৩৭ বিধ প্ৰজাতিৰ ঔষধি গছেই প্ৰাকৃতিকভাৱে বনাঞ্চলত পোৱা যায়। এনেধৰণৰ বনৌষধিসমূহৰ ভিতৰত **গন্ধ কচু** বা **গন্ধী কচু** এবিধ অতি গুৰুত্বপূৰ্ণ মূল্যৱান গছ হয়।

গন্ধ কচুৰ বৈজ্ঞানিক নাম হৈছে ***হমাল'মেনা এৰমেটিকা (Homalomena aromatica)*** । হিন্দী ভাষাত এই উদ্ভিদক সুগন্ধ মন্ত্ৰী নামে জনা যায়। ই এবিধ চিৰসেউজীয়া, উৎকৃষ্টমানৰ সুগন্ধীযুক্ত, ঔষধি গুণেৰে পৰিপুষ্ট, বাণিজ্যিক-ভাৱে অতি মূল্যৱান উদ্ভিদ । জোপোহাজাতীয় উদ্ভিদৰ অন্তৰ্গত গন্ধ-কচুৰ মুঠ ১৪০ টা প্ৰজাতি পৃথিৱীত পোৱা যায় যদিও ভাৰতবৰ্ষত মুঠ ৬০ টা প্ৰজাটিহে বিস্তাৰিত হৈ আছে । ইয়াৰে কেৱল ২০ টা প্ৰজাটিহে উত্তৰ পূৰ্বাঞ্চলৰ নিম্নউচ্চতাৰ বনাঞ্চলত অথবা পাহাৰৰ নামনি অঞ্চলৰ সেমেকা পৰিবেশত পোৱা যায়। গন্ধ কচু ০.৫-০.৮ মিটাৰ

পৰ্য্যন্ত ওখ হয়। পাতৰ বৰণ সেউজীয়া আৰু পাণ আকৃতিৰ হোৱা দেখা যায়। ফুলৰ পাহি নাথাকে । ফুলবিলাক পাতৰ আঁৰত লুকাই থকাৰ দৰে হয়।

গন্ধ কচুৰ খেতি কৰাৰ প্ৰণালী:

পানী জমা নোহোৱা, বালিচঁহীয়া, সামান্য আম্লিকগুণবিশিষ্ট (pH 4.9-5.5) আৰু সাৰুৱা মাটি গন্ধ কচু খেতিৰ বাবে উপযোগী । উষ্ণতা ১৬^{0}-৩২^{0} চেলচিয়াচ, আদ্ৰ জলবায়ু আৰু বছৰি ২০০০-৩০০০ মিলিমিটাৰ বৰষুণ এইবিধ উদ্ভিদৰ বাবে প্ৰয়োজন হয়। বাৰিষা আৰম্ভ হোৱাৰ সময়ত অথবা বাৰিষা খেতি আৰম্ভ কৰা হয়। গন্ধ কচুৰ ক্ষেত্ৰত গুটিৰ দ্বাৰা প্ৰাকৃতিকভাৱে বিস্তাৰণ হোৱা দেখা নাযায়। তাৰোপৰি অংগজ বিস্তাৰণৰ ক্ষেত্ৰত উপযুক্ত পদ্ধতি ব্যৱসায়িক ভিত্তিত তথ্যসহকাৰে প্ৰমাণিত নোহোৱাৰ বাবে পৰম্পৰাগতভাৱে চলি অহা অংগজ বিস্তাৰণৰ প্ৰথাৰেই গন্ধ কচুৰ খেতি কৰা হয়। এই ক্ষেত্ৰত মূঢ়া অংশই বিস্তাৰণৰ বাবে ব্যৱহাৰ কৰা হয়। মূঢ়াবিলাক এপ্ৰিল-মে মাহত ৰুব লাগে । ১ হেক্টৰ মাটিত প্ৰায় ৫- ১০ কুইন্টল মূঢ়াৰ প্ৰয়োজন হয়। দেখা গৈছে যে পাতৰ সৈতে মূঢ়াৰ একেবাৰে ওপৰৰ অংশ খেতিৰ বাবে উত্তম হয় আৰু লগতে ২.৫ -৩.০ চেঃমি পৰিধিৰ মূঢ়া হ'লে ভাল। ইতিমধ্যে গজালি ওলোৱা মূঢ়াৰ অংশ ৩০ চেঃমিঃ ব্যৱধানত ৰুব লাগে অন্যথা ৪৫ চেঃমিঃ ব্যবধান ৰাখিব লাগে। প্ৰায় ১.৫ মাহৰ পিছত মূঢ়াবিলাকৰ পৰা নতুন কোঁহ ওলায়।

সাৰ প্ৰয়োগঃ উৎকৃষ্ট মানৰ ফচল পাবৰ বাবে খেতিত জৈৱিক সাৰ প্ৰয়োগ কৰিব পাৰি। বাৰিষা আৰম্ভ হোৱাৰ আগতেই মাটিডৰা প্ৰস্তুত কৰাৰ সময়তে প্ৰতি হেক্টৰত নাইট্ৰজেন, ফচফৰাচ্ আৰু পটাচিয়াম ৪০:৫০:৩০ কেজি হাৰত প্ৰয়োগ কৰিব পাৰি।

খেতি চপোৱাঃ খেতি আৰম্ভ কৰাৰ ৩ বছৰৰ অন্তত খেতি চপাবৰ বাবে সাজু হ'ব পাৰি। খেতি সদায় শীতকালি চপাব লাগে, কাৰণ এই সময়ত গছজোপাত সৰ্বোচ্চ পৰিমাণৰ তেল নিহিত হৈ থাকে। উল্লেখনীয় যে খেতি চপোৱাৰ সময়ত

ঘাই মূঢ়াবিলাকহে সংগ্ৰহ কৰিব লাগে। সংগ্ৰহৰ পিছত মূঢ়াত লাগি থকা পাত আৰু শিপাবিলাক আঁতৰাই পেলাব লাগে আৰু ২.৫-৩.০ চেঃমিঃ জোখত কাটি ৰ'দত শুকুৱাৰ ব্যৱস্থা কৰিব লাগে । মূঢ়াৰ টুকুৰাবিলাক কটকটীয়া টান নোহোৱা পৰ্য্যন্ত শুকুৱাব লাগে।

গন্ধ কচু তেল আৰু ইয়াৰ উপাদানসমূহঃ

গন্ধ কচুৰ শুকান মূঢ়াৰ টুকুৰাবিলাকৰ বাষ্পীয় পাতন কৰি এবিধ সুগন্ধী তেল সংগ্ৰহ কৰা হয়। এই তেলৰ বৰণ পাতল হালধীয়া নাইবা পাতল মুগা বৰণৰ হোৱা দেখা যায়। উচ্চ মান বিশিষ্ট এই তেল বিভিন্ন ৰোগৰ চিকিৎসাত ব্যৱহাৰ কৰা হয়। এই তেল প্ৰসাধনজাত সামগ্ৰীৰ উদ্যোগ, পাৰফিউম উদ্যোগ আদিতো প্ৰচুৰ ভাৱে ব্যৱহাৰ কৰা হয়। বিজ্ঞানগাৰত ৰাসায়নিক বিশ্লেষণ কৰি দেখা গৈছে যে প্ৰায় ৫৫ বিধ বেলেগ বেলেগ ৰাসায়নিক উপাদান গন্ধ কচুৰ তেলত নিহিত হৈ আছে। এইবিলাকৰ ভিতৰত প্ৰধান উপাদানসমূহ হৈছে লিনাল'ল (Linalool) ৬২.৫%, টাৰপিন (Terpene-4-01) ৭.০৮%, δ-কেডিনেন্ (δ-cadinene) ৫.৫৭%, α-কেডিন'ল (α-Cadinol) ৩.৭১% আৰু স্পেচুলেনল (Spatulenol) ১.৮১%। গন্ধ-কচু তেলত T- মিউৰ'ল ৫.৩২%, ভিৰিডিফ্লৰ'ল (viridoflorol) ৩.৬৯%, α-চেলিনেন (α-selinene) ২.১৯%, m-ইমিনি (m-Cymene) ২.১৯% আৰু y-মিউৰ'লিন (γ-Murolene) ১.১৪% ৰ উপস্থিতি পোৱা যায়।

গন্ধ কচু তেলৰ ব্যৱহাৰঃ ভাৰতৰ উত্তৰ পূৰ্বাঞ্চলত বসবাস কৰা লোকসকলে পূৰ্বৰে পৰা গন্ধ কচু গছজোপা নাইবা ইয়াৰ পৰা পোৱা তেলৰ দ্বাৰা শৰীৰত হোৱা নানানটা বেমাৰৰ চিকিৎসা পৰম্পৰাগতভাৱে কৰি আহিছে। এক কথাত ক'বলৈ গ'লে বনৌষধৰ বৈজ্ঞানিক গৱেষণাৰ ক্ষেত্ৰখন লোক সংস্কৃতিৰ আধাৰতহে গঢ় লৈ উঠিছে। লোক সংস্কৃতিৰ ইতিহাসত উল্লেখ থকা কোনো উদ্ভিদৰ ঔষধি গুণ প্ৰমাণিত হ'লে পৰৱৰ্তী সময়ত তেনে উদ্ভিদৰ ৰাসায়নিক বিশ্লেষণ তথা অন্যান্য গৱেষণামূলক কাম কৰা হয়।

গন্ধ কচুৰ পাত আৰু মূঢ়া অংশ উত্তৰ পূৰ্বাঞ্চলৰ বহু জন-জাতীয় লোকে পাচলি হিচাপে ৰান্ধি খায়। পাত আৰু মূঢ়াৰ পৰা তৈয়াৰ কৰা পেষ্ট বিভিন্ন ৰোগ যেনে পেটৰ বিষ, গাঠিৰ বিষ, কটা-চিঙাৰ ঘাঁ শুকুৱা, ছালৰ বেমাৰ নিৰাময়ত ঔষধ হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰা হয়। এইবিধ পেষ্ট্ কেঁচুৱাৰ পানী লগা, জণ্ডিছ্, ডায়েৰিয়া আদি ৰোগৰ চিকিৎসাতো ঔষধ হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰা হয়। মূঢ়া অংশ পুষ্টিৰে ভৰা হেতুকে পেটৰ যিকোনো ধৰণৰ সমস্যাৰ পৰা হাত হাৰিবলৈ সেৱন কৰা হয়। সম্পূৰ্ণ গছজোপাৰ পৰা নিষ্কাষণ কৰা ৰস মাংসপেশীৰ দুৰ্বলতা আৰু বিষ নিৰাময়ত ব্যৱহাৰ কৰা হয়। তেজ পৰিশোধন আৰু চুলিত হোৱা উফি দূৰ কৰিবলৈকো এই ৰস ব্যৱহাৰ কৰা হয়। গন্ধ কচু তেলৰ ঔদ্যোগিক ব্যৱহাৰ অতি গুৰুত্বপূৰ্ণ। মূঢ়া অংশৰ পৰা নিষ্কাষিত তেলত ভেঁকুৰনাশক গুণ নিহিত হৈ থাকে, সেয়ে ছালৰ বেমাৰ নিৰাময়ৰ ঔষধ প্ৰস্তুতকৰণত এইবিধ তেল ব্যৱহাৰ কৰা হয়। তাৰোপৰি এই তেলত পলুনাশক গুণো থাকে বাবে ম'হ-মাখি আদি খেদোৱা দ্ৰব্য প্ৰস্তুতকৰণত ব্যৱহাৰ কৰা হয়। তেল নিষ্কাষণৰ সময়ত ৰৈ যোৱা অৱশিষ্ট খিনি ধূপ-কাঠি তৈয়াৰ কৰা ক্ষুদ্ৰ উদ্যোগত ব্যৱহাৰ কৰা হয়। ইয়াৰ ওপৰিও গন্ধ -কচুৰ শিপাত এন্টি অক্সিডেন্ট

থকাৰো প্ৰমাণ পোৱা গৈছে। প্ৰসাধনজাত সামগ্ৰী আৰু পাৰফিউম উদ্যোগত এই তেলৰ চাহিদা অত্যন্ত বেছি।

<u>গন্ধ -কচুৰ বজাৰখন</u> :- মূলতঃ হাবিৰ পৰা সংগ্ৰহ কৰা গন্ধ-কচুৰ মূঢ়া অংশই বজাৰত বিক্ৰীৰ বাবে ৰখা হয়। প্ৰতি কেজিত ১ টকাৰ পৰা ২ টকা হাৰত থলুৱা বেপাৰীসকলৰ পৰা কিছু মধ্যস্থতাকাৰীলোকে ক্ৰয় কৰি উচ্চ হাৰত কোনো উদ্যোগক যোগান ধৰাৰ ব্যৱস্থা কৰি লয়। অৱশ্যে অসমৰ নাৰ্চাৰীত কৰা খেতিৰ উৎপাদনৰ ক্ষেত্ৰত প্ৰতি কেজিত ৬০ টকাৰ পৰা ৯০ টকা পৰ্য্যন্ত মূঢ়া বিলাকৰ দাম হোৱা দেখা যায়। গন্ধ-কচু সুগন্ধী তেলৰ কথা যদি কোৱা হয় তেন্তে দেখা যায় যে প্ৰতি কেজিত ৩০০০০ ৰ পৰা ৪০০০০ টকা দৰত বিক্ৰী হোৱা দেখা যায়।

<u>বৰ্তমানৰ স্থিতি আৰু কৰণীয়ঃ</u> গন্ধ-কচুৰ তেলৰ চাহিদা ৰাষ্ট্ৰীয় আৰু আন্তঃ ৰাষ্ট্ৰীয় বজাৰত দিনক দিনে বৃদ্ধি পাই অহা হেতুকে এচাম লোকে হাবিৰ পৰা জধে মধে গন্ধ-কচু সংগ্ৰহ কৰিছে, ফলত প্ৰাকৃতিকভাৱে এইবিধ উদ্ভিদৰ উৎসবিলাক দিনক দিনে হ্ৰাস পাবলৈ ধৰিছে। আনহাতে বিভিন্ন ঠাইত বনাঞ্চল উচ্ছেদ কৰি নতুন বাট-পথ নিৰ্মাণ কৰা, গাঁও অঞ্চল নগৰীকৰণ কৰা, উদ্যোগ আদি স্থাপন কৰা ইত্যাদিবিলাক কাৰ্য্যকলাপৰ বাবে বনাঞ্চলৰ পৰিমাণ কমি আহিছে আৰু আওপকীয়াকৈ গন্ধ-কচু বা তেনেধৰণৰ আন আন মূল্যৱান বনৌষধি বিলাক হ্ৰাস পাই আজিৰ তাৰিখত সংকটময় অৱস্থাত অৱতীৰ্ণ হৈছেহি। গতিকে গন্ধ -কচুৰ সংবৰ্ধন, সংৰক্ষণৰ প্ৰয়োজনীয়তা আহি পৰিছে। কৃষকসকলক গন্ধ -কচুৰ খেতিৰ প্ৰতি আকৃষ্ট কৰিবৰ বাবে চৰকাৰী কৃষি বিভাগে স্থানীয় আত্ম -সহায়ক গোট আৰু বে-চৰকাৰী সংস্থানসমূহৰ জৰিয়তে তলত দিয়া ধৰণেৰে পদক্ষেপ গ্ৰহণ কৰিব পাৰে।

❖ গন্ধ-কচুৰ বিস্তাৰণৰ উন্নতমানৰ পদ্ধতি উদ্ভাৱন কৰিব লাগে আৰু তেনেধৰণৰ বিষয়বস্তুৰ ওপৰত যুগুত কৰি উলিওৱা হাতপুথি

কৃষকৰ মাজত বিতৰণ কৰিব লাগে যাতে কম সময়ত লগতে কম খৰচত অধিক ফচল উৎপাদন কৰিব পাৰে।

- কৃষকসকলক কৃষিবনানিকৰণৰ দ্বাৰা গন্ধ-কচু সংৰক্ষণ কৰিবলৈ উৎসাহিত কৰিব লাগে।
- প্ৰাকৃতিক উৎস সমূহৰ উপৰিও অন্যান্য উপযুক্ত স্থান যেনে উদ্ভিদ উদ্যান, পাৰ্ক আদিত সংৰক্ষণ কৰাৰ উপৰিও খেতিয়কসকলৰ নিজৰ বাৰীতো লাভজনকভাৱে খেতি কৰি সংৰক্ষণ কৰিব লাগে।
- যিহেতু গন্ধ-কচু ঔষধি গুণেৰে সমৃদ্ধ, সেয়ে পৰম্পৰাগত ভাৱে প্ৰস্তুত কৰা ঔষধসমুহৰ ওপৰিও বিজ্ঞান ভিত্তিত অধিক গৱেষণা কৰাৰ প্ৰয়োজন আছে। এইক্ষেত্ৰত গৱেষণামূলক প্ৰতিষ্ঠানসমূহে বিভিন্ন প্ৰকল্পৰ মাধ্যমেৰে আগভাগ লোৱা বাঞ্চনীয়।

****

ধৰিত্ৰী আইৰ জ্বৰ- পাৰিপাৰ্শ্বিকতাৰ প্ৰতি প্ৰত্যাহ্বান

ৰুণুমী দেৱী বৰঠাকুৰ
বৰ্ষাৰণ্য গৱেষণা প্ৰতিষ্ঠান, যোৰহাট

ধৰিত্ৰী আইৰ জ্বৰ- শিৰোনামটো দেখিয়েই হয়তো সকলোৰে মনত এটা প্ৰশ্ন উদয় হৈছে- ধৰিত্ৰী অৰ্থাৎ আমাৰ ধুনীয়া পৃথিৱীখনৰ জ্বৰ হৈছে অৰ্থাৎ পৃথিৱীৰ উষ্ণতা বৃদ্ধি হৈছে। যেতিয়া শৰীৰৰ স্বাভাবিক উষ্ণতাতকৈ বেছি উষ্ণতা হয় তেতিয়াই জ্বৰ হয়। আমাৰ ধৰিত্ৰী আইৰো স্বাভাবিক উষ্ণতা বৃদ্ধি হৈছে। এই উষ্ণতানো কিয় বৃদ্ধি হৈছে ? ইয়াৰ কাৰণ বহুতো । উষ্ণতা বৃদ্ধিৰ এই পৰিঘটনাটি পৃথিৱীৰ জন্মলগ্নৰে পৰা ঘটি থকা এটি স্বাভাৱিক পৰিঘটনা যদিও বিগত দুই-তিনি শতিকাৰ পৰা উষ্ণতা বৃদ্ধিৰ পৰিমাণ দ্ৰুত গতিত বৃদ্ধি পাইছে। মানৱ সৃষ্ট প্ৰদূষণ আৰু প্ৰাকৃতিক সম্পদৰাজিৰ দ্ৰুত গতিত ধ্বংসৰ ফলত জীৱজগতৰ লগতে সমগ্ৰ বিশ্বৰে অস্তিত্ব বিপন্ন হৈছে। বায়ুমণ্ডলত থকা সেউজগৃহ গেছ আৰু বায়ু প্ৰদূষক পদাৰ্থবোৰৰ পৰিমাণ বাঢ়ি যোৱাৰ ফলত পৃথিৱীৰ উষ্ণতা বৃদ্ধি পাইছে । বায়ুমণ্ডলৰ মাজেদি পৃথিৱীলৈ অহা সৌৰ বিকিৰণৰ বেছি অংশই ভূপৃষ্ঠই শোষণ কৰি লয়। ভূপৃষ্ঠৰ দ্বাৰা শোষিত তাপ পুনৰ ছুটি তৰংগৰ অৱলোহিত বিকিৰণ হিচাপে নিৰ্গত হয় আৰু এটা অংশ মহাকাশলৈ নিক্ষেপিত হয়। বায়ুমণ্ডলত থকা বিভিন্ন গেছৰ আৱৰণখনে ইয়াৰ উত্তাপ বাহিৰলৈ যোৱাত বাধা প্ৰদান কৰে আৰু এই প্ৰক্ৰিয়াটোয়েই হৈছে সেউজ গৃহ প্ৰভাৱ। প্ৰকৃতিয়ে বায়ুমণ্ডলত থকা জলীয়বাষ্পৰ সহায়ত সেউজ গৃহ প্ৰভাৱ সৃষ্টি কৰাৰ কাৰণে আমাৰ পৃথিৱীখন জীৱজগতৰ বাবে উপযোগী হৈছে। কিন্তু যদিহে এই গেছ সমূহৰ গাঢ়তা বায়ুমণ্ডলৰ হিচাপতকৈ বেছি হয়, তেতিয়া অধিক তাপ শোষণ কৰি উষ্ণতা বৃদ্ধি কৰিব । বায়ুমণ্ডলত এই গেছ

সমূহৰ গাঢ়তা PPM (Parts Per Million) ত জোখা হয় আৰু বায়ুমণ্ডলত এই গেছ সমূহৰ উষ্ণতা বৃদ্ধিৰ সক্ৰিয়তা বেলেগ বেলেগ আৰু ইয়াক GWP (Global Warming Potential) ত গণনা কৰা হয়। সাধাৰণতে উষ্ণতা বৃদ্ধিৰ কাৰণে কাৰ্বন-ডাই-অক্সাইড ক জগৰীয়া কৰা হয় যদিও মিথেন, নাইট্ৰাছ অক্সাইড আৰু ফ্লৰিনেটেড গেছ ও সমানেই দায়ী।

মানৱ সভ্যতাৰ উন্নয়নৰ বাবে কৰা বিভিন্ন কাৰ্য্যৰ ফলত বনাঞ্চলবোৰ ধ্বংস হোৱাৰ বাবে অতিৰিক্ত কাৰ্বন- ডাই-অক্সাইড খিনি বায়ুমণ্ডলতেই সঞ্চিত হৈ থাকে, তদুপৰি জীৱাশ্ম ইন্ধনৰ দহন, কৃষিকাৰ্য, পশুধন, আমি ব্যৱহাৰ কৰা ৰেফ্ৰিজাৰেটৰ (Fridge), বাতানুকুল যন্ত্ৰ (AC) আদি সকলোৰে পৰা কাৰ্বন- ডাই-অক্সাইড, মিথেন, নাইট্ৰাছ অক্সাইড, চি.এফ.চি. (C.F.C) আদি অহৰহ বায়ুমণ্ডললৈ নিৰ্গত হৈ আছে, এই অতিৰিক্ত গেছ সমূহ বায়ুমণ্ডলৰ পৰা ওলাই যাব নোৱাৰি নিতৌ ভূ-পৃষ্ঠৰ উষ্ণতা বৃদ্ধি কৰাৰ লগতে জলবায়ুৰ পৰিবৰ্তন ঘটাইছে, ফলত সঘনাই খৰাং বতৰ, বহুবৃষ্টি, বানপানী, অনাবৃষ্টি, ধুমুহা (এলনিনো, হাৰিকেন, চুনামী) আদি প্ৰাকৃতিক দুৰ্যোগে জনজীৱন বিধ্বস্ত কৰিছে। উষ্ণতা বৃদ্ধিৰ ফলত তিৰ্ব্বতৰ পৰা মেৰু অঞ্চললৈ (Arctic and Antarctic) গ্লেছিয়াৰ (Glaciers) আৰু পাৰমাফ্ৰষ্ট (Permafrost) বোৰ গলিবলৈ লৈছে। উত্তৰ মেৰু অঞ্চলৰ উষ্ণতা পৃথিৱীৰ তুলনাত দুগুণ ক্ষিপ্ৰতাৰে বাঢ়িছে আৰু বৰফৰ তৰপবোৰ পাতল হৈ আহিছে। IPCC (Inter Government panel on Climate Change) ৰ সমীক্ষা মতে ইউৰোপ, আফ্ৰিকা (পূব অঞ্চল) আৰু অন্যান্য গ্লেছিয়াৰ সমূহৰ ৮০ শতাংশ বৰফ এই শতিকাৰ শেষৰ ফালে গলিব । এই প্ৰতিবেদন অনুসৰি চলিত শতিকাত সমুদ্ৰ পৃষ্ঠৰ উচ্চতা প্ৰতিদশকত ৩-১০ ছেঃমিঃ হিছাপে বৃদ্ধি হ'ব, সেই অনুসৰি ২০৩০ চনত ২০ ছেঃমিঃ আৰু ২১০০ চনত ৬৫ ছেঃমিঃ বৃদ্ধি পাব।

ধৰিত্ৰী আইৰ এই উষ্ণতা বৃদ্ধিৰ ৰোগটি সমগ্ৰ বিশ্ববাসীৰ কাৰণে ত্ৰাসৰ কাৰণ হৈ পৰিছে । এই ভয়ানক ৰোগটিৰ পৰা পৰিত্ৰাণ পাবলৈ হ'লে আমি এটি পৰিবেশ অনুকূল (Ecofriendly) জীৱন-যাপন কৰিবলৈ শিকিব লাগিব । সৰ্বপ্ৰথমে বনধ্বংস

ৰোধ কৰিব লাগিব, কাৰ্বন- ডাই-অক্সাইডৰ নিৰ্গমন কমাব লাগিব। জীৱাশ্ম ইন্ধনৰ সলনি সৌৰশক্তি, বায়ুশক্তি, জলশক্তিৰ ব্যবহাৰ বৃদ্ধি কৰিব লাগিব । মাটি, পানী আদিত প্লাষ্টিক আৰ্বজনাৰ নিক্ষেপন কমাব লাগিব আৰু বনানিকৰণত অধিক গুৰুত্ব দিব লাগিব । গতিকে আহক, আমি সকলোৰে মিলি ধৰিত্ৰী আইৰ জ্বৰ ৰোধ কৰিবলৈ চেষ্টা কৰোঁ । আমাৰ উত্তৰাধিকাৰী সকলক এখন ধুনীয়া ৰোগ মুক্ত ধৰণী দেখিবলৈ আৰু বসবাস কৰিবলৈ এটি সুযোগ দিয়াৰ চেষ্টা কৰোঁ।

****

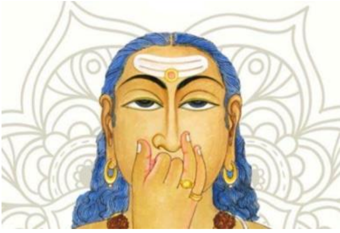

Swara Yoga
স্বৰ যোগ

ভূৰন কছাৰী

বৰ্ষাৰণ্য গৱেষণা প্ৰতিষ্ঠান, যোৰহাট

আমি সচেতন হওঁ বা নহওঁ, দিনটোত চৌবিশ ঘণ্টা ধৰি আমাৰ দেহত উশাহ-নিশাহ চলি থাকে। উশাহ মানুহৰ আটাইতকৈ মূল্যৱান সম্পদ কাৰণ ইয়াৰ অবিহনে আমি তিনি মিনিটতকৈ অধিক সময় জীয়াই থাকিব নোৱাৰোঁ। এষাৰ কথা আছে যে মানুহ অকলে জন্ম হয় আৰু অকলে মৃত্যু হয়, এইটো ভুল কাৰণ মানুহৰ জন্ম হয় নিজৰ উশাহৰ সৈতে, আৰু তেওঁৰ সূক্ষ্ম প্ৰাণ, যিটো উশাহৰ তত্ত্ব, আঁতৰি গলে মৃত্যু হয়। উশাহ মানুহৰ 'আত্মা' সংগী। গতিকে উপনিষদত স্বৰক আত্মস্বৰূপ বা ব্ৰহ্ম স্বৰূপ বুলি উল্লেখ কৰা হৈছে, যাৰ ফলত মানুহ ব্ৰহ্ম বা বিশ্বজনীন চেতনাৰ অংগ বুলি অনুমান কৰা হৈছে। যদি মানুহে উশাহৰ প্ৰকৃত বাস্তৱতাক উপলব্ধি কৰিব পাৰে, তেন্তে মানুহে আত্মাক উপলব্ধি কৰিব পাৰিব।

আমি যেতিয়া ‘স্বৰ’ শব্দটো ব্যৱহাৰ কৰোঁ, তেতিয়া আমি নাকৰ ফুটাৰ পৰা বৈ অহা বায়ুৰ কথাকে ভাবো। কিন্তু সেইটো নহয়, আমি উশাহ-নিশাহৰ এক অতি সূক্ষ্ম আৰু গুৰুত্বপূৰ্ণ দিশ প্ৰাণৰ প্ৰবাহৰ কথাও ভাবিব লাগিব । আচলতে উশাহ-নিশাহ লোৱাটো শৰীৰৰ আটাইতকৈ গুৰুত্বপূৰ্ণ কাম যদিও ইয়াক সাধাৰণতে আওকাণ কৰা হয়। প্ৰতিটো উশাহৰ এটা অন্তৰ্নিহিত তাৎপৰ্য্য আৰু এটা বিশেষ ‘ক’ডযুক্ত বাৰ্তা’ থাকে। সাধাৰণ মানুহৰ বাবে ই উশাহ-নিশাহৰ এটা শাৰীৰিক প্ৰক্ৰিয়া মাথোঁ। আধ্যাত্মিক আকাংক্ষীৰ বাবে উশাহ-নিশাহ এনে এক বাহন যাৰ দ্বাৰা

তেওঁ আধ্যাত্মিকতাৰ চূড়ান্ত লক্ষ্যত উপনীত হ'ব পাৰে। সাধাৰণতে উশাহ-নিশাহ হৈছে শৰীৰে কৰা এক যান্ত্ৰিক কাৰ্য্য, কিন্তু স্বৰ যোগত উশাহ-নিশাহ হৈছে এনে এক প্ৰক্ৰিয়া যিটোক নিজৰ ইচ্ছা মতে ইয়াৰ গতিক নিয়ন্ত্ৰণ কৰিব পাৰি।

সাধাৰণতে আমাৰ দেহত উশাহ-নিশাহ দুয়োটা নাকৰ ফুটাৰে একেলগে সোমাই আৰু ওলাই যায় যেন লাগে, কিন্তু সেয়া নহয়। আমি যদি কেতিয়াবা সময় উলিয়াই আমাৰ উশাহ-নিশাহৰ গতিক পৰ্যবেক্ষণ কৰোঁ, তেতিয়া আমি লক্ষ্য কৰিম যে বেছি ভাগ সময়তে কেৱল এটা নাকৰ ফুটাৰে এটা নিৰ্দিষ্ট সময়ৰ বাবেহে উশাহ-নিশাহ সংঘটিত হৈ থাকে। নিৰ্দিষ্ট সময়ৰ ব্যৱধানত নাকৰ ফুটা খোলা আৰু বন্ধ হৈ থাকে। এটা স্বৰ বাওঁ নাকৰ ফুটাৰে আন এটা স্বৰ সোঁফালে আৰু তৃতীয়টো দুয়োটা নাকৰ ফুটা একেলগে প্ৰবাহিত হয়। বিভিন্ন স্বৰায়ে স্নায়ুতন্ত্ৰৰ বিভিন্ন শক্তি কেন্দ্ৰ আৰু দিশক উদ্দীপিত কৰি আমাক বিভিন্ন ধৰণে প্ৰভাৱিত কৰে। কেৱল আকস্মিক ভাৱে সোঁ নাকৰ ফুটাৰে আৰু আন কেতিয়াবা বাওঁফালৰ মাজেৰে স্বৰ বৈ যায় এনে নহয়। এই ক্ৰীয়াটোৰে শাৰীৰিক ভাৱে আমাৰ স্নায়ুতন্ত্ৰত প্ৰভাৱ পেলায়, আৰু এক নিৰ্দিষ্ট ধৰণৰ উদ্দীপক উৎপন্ন কৰে। তদুপৰি মগজুত ইয়াৰ নিৰ্দিষ্ট প্ৰভাৱ পৰে, যিটোৰ বাবে অতি পদ্ধতিগত নিয়ন্ত্ৰণৰ প্ৰয়োজন হয়। স্বৰ যোগ হৈছে সেই বিজ্ঞান যাৰ জৰিয়তে আমি এই সমগ্ৰ প্ৰক্ৰিয়াটো বিষয়ে জানিলৈ সক্ষম হওঁ। এটা নিয়মীয়া ব্যৱধানত স্বৰৰ প্ৰবাহ কেনেকৈ সলনি হয় তাক স্বৰ যোগে বুজাইছে । ই একেবাৰেই অস্বাভাৱিক নহয়। প্ৰতি ঘণ্টা বা প্ৰতি ঘণ্টা বিশ মিনিটৰ পিছত সক্ৰিয় নাকৰ ফুটাটোৰ গতি সলনি হয়। এইটো ছন্দই সকলো মানসিক আৰু শাৰীৰিক প্ৰক্ৰিয়া সমূহ নিয়ন্ত্ৰণ কৰে। যদি স্বৰ অনিয়মিত হয় তেন্তে সেয়া স্পষ্ট ইংগিত যে শৰীৰত কিবা এটা শাৰীৰিক ক্ৰিয়া সঠিকভাৱে কাম কৰিবলৈ সক্ষম হোৱা নাই।

স্বৰযোগৰ পৰা আমি উশাহৰ প্ৰকৃতি বিষয়ে বুজিবলৈ সক্ষম হওঁ। মানৱ শৰীৰত উশাহ আৰু শৰীৰত ইয়াৰ প্ৰভাৱৰ কাৰণে মানসিক, শাৰীৰিক আৰু আধ্যাত্মিক এই তিনি ধৰণৰ ক্ৰিয়া হয় । যেতিয়া আপুনি ধ্যান কৰে বা প্ৰাৰ্থনা কৰে বা সত্য কথা চিন্তা কৰে, ই আধ্যাত্মিক ক্ৰিয়া। যেতিয়া আপুনি খোজ কাঢ়ে, কথা

পাতে, বা খোৱা কাম কৰে, যেতিয়া হজম শক্তি চলি থাকে আৰু এনজাইমবোৰে শৰীৰত কাম কৰি থাকে, সেয়া হৈছে শাৰীৰিক ক্ৰিয়া। যেতিয়া আপুনি চিন্তা কৰি থাকে বা কবিতা বা গীত এটা আপুনি মুখস্থ কৰি থাকে বা কিবা এটা পৰিকল্পনা কৰি থাকে সেয়া মানসিক ক্ৰিয়া।

আমাৰ বাওঁফালৰ স্বৰে প্ৰতিনিধিত্ব কৰে মানসিক ক্ৰিয়া, সোঁ-বাওঁফালৰ স্বৰে প্ৰতিনিধিত্ব কৰে শাৰীৰিক ক্ৰিয়া আৰু দুয়োটা স্বৰে একেলগে প্ৰতিনিধিত্ব কৰে আধ্যাত্মিক ক্ৰিয়া। বাওঁ নাকৰ ফুটাটো যেতিয়া বৈ যায়, তেতিয়া ইয়াৰ পৰা বুজা যায় যে মানসিক শক্তি প্ৰধান হয় আৰু প্ৰাণিক শক্তি দুৰ্বল হয়। সোঁ নাকৰ ফুটাটো যেতিয়া বৈ যায় তেতিয়া প্ৰাণিক শক্তিবোৰ শক্তি প্ৰধান হয় আৰু মানসিক দিশটো দুৰ্বল হয় । যেতিয়া দুয়োটা নাকৰ ফুটা একেলগে বৈ যায় আধ্যাত্মিক শক্তি, আত্মাৰ বল, ক্ষমতা বৃদ্ধি হয়। অৰ্থাৎ যদি আপুনি ধ্যান কৰি থকাৰ সময়ত সোঁ নাকৰ ফুটাটো বৈ যায়, আপুনি শাৰীৰিক অসুবিধা পাব। শৰীৰ অস্থিৰ হৈ পৰিব। যদি বাওঁ নাকৰ ফুটাটো বৈ আছে তেন্তে আপুনি শাৰীৰিকভাৱে বিচলিত নহ'বও পাৰে, কিন্তু মন বিচলিত হ'ব। যেতিয়া দুয়োটা নাকৰ ফুটা খোলা থাকে মন একবিন্দু হৈ পৰে। তেতিয়া আপুনি ধ্যান প্ৰক্ৰিয়াত সহজেই নিমগ্ন হ'ব পাৰে। বাওঁ নাকৰ ফুটাটো ইড়া নাড়িৰ সৈতে, সোঁ নাকৰ ফুটা পিংগালা সৈতে, আৰু দুয়োটা নাকৰ ফুটা মূল নাড়ি বা সুছুন্নাৰ সৈতে সংযুক্ত হৈ থাকে। বৈদ্যুতিক বৰ্তনীৰ মতে বাওঁ স্বৰৰ দ্বাৰা সৃষ্টি হোৱা শক্তিৰ প্ৰবাহে ঋণাত্মক কাৰ্য্য আৰু সোঁ স্বৰৰ দ্বাৰা সৃষ্টি হোৱা শক্তিৰ প্ৰবাহে ধনাত্মক কাৰ্য্য হিচাবে কাম কৰে। যেতিয়া সোঁ নাকৰ ফুটাটো বৈ থাকে, তেতিয়া পিংগালাই শৰীৰক ক্ষমতাক উদ্দীপিত কৰে। যেতিয়া বাওঁ নাকৰ ফুটা বৈ থাকে, তেতিয়া ইড়াই মানসিক ক্ষমতাক উদ্দীপিত কৰে। যেতিয়া দুয়োটা নাকৰ ফুটা একেলগে সক্ৰিয় হৈ থাকে তেতিয়া সুষুন্না নাদি আধ্যাত্মিক ক্ষমতাক উদ্দীপিত কৰে। সুষুন্নাৰ শক্তি মেৰুদণ্ডৰ মাজেৰে তলৰ পৰা ওপৰলৈ যায় আৰু ভ্ৰূৰ কেন্দ্ৰৰ পিছফালৰ বিন্দু আজ্ঞা চক্ৰত ইড়া আৰু পিংগলা সৈতে একত্ৰিত হয়। যাৰ ফলত

সুষুম্নাৰ জৰিয়তে কুণ্ডলিনি শক্তি, উচ্চ শক্তিশালী আধ্যাত্মিক শক্তিক, উদ্দীপিত কৰিব পৰা যায়।

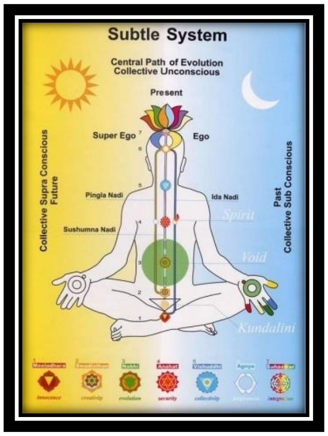

স্বৰ যোগে বুজাইছে যে নাকৰ বৰ্তনীত ইড়া আৰু পিংগলা নামৰ প্ৰধান শক্তি বৰ্তনী দুটাক উশাহ-নিশাহৰ দ্বাৰা নিয়ন্ত্ৰণ কৰিব পাৰি। যদি এই সোঁত বোৰ সঠিকভাৱে বৈ নাথাকে তেন্তে উশাহ-নিশাহত ই যথেষ্ট প্ৰভাৱ পৰে। ইলেক্ট্ৰ'-নেছ'গ্ৰাফিক গৱেষণাই আচলতে নাকৰ শ্লেষ্মাৰ আৱৰণৰ পৰা নিৰ্গত হোৱা বৈদ্যুতিক বিভৱৰ আধান দেখুৱাইছে আৰু এই আধানসমূহ সাধাৰণতে অসমান। মানুহৰ মনোশাৰীৰিক অৱস্থাৰ সম্পৰ্কত এই আধানবোৰৰ পৰিৱৰ্তন ঘটে বুলি বিশ্বাস কৰা হয়। স্বৰযোগৰ সৈতে প্ৰত্যক্ষ সম্পৰ্কত আমি ক'ব পাৰো যে বাওঁ নাকৰ ফুটাৰে যোৱা বায়ু আৰু মেৰুদণ্ডৰ বাওঁফালৰ পৰা পাৰ হৈ যোৱা বিদ্যুৎচুম্বকীয় প্ৰবাহ আৰু ইয়াৰ বিপৰীতে সোঁ নাকৰ ফুটাৰে উশাহ লোৱা আৰু মেৰুদণ্ডৰ সোঁফালৰ পৰা পাৰ হৈ যোৱা বিদ্যুৎ চুম্বকীয় প্ৰবাহৰ মাজত সম্পৰ্ক থকা যেন লাগে। স্বৰযোগত এইটো অতি গুৰুত্বপূৰ্ণ কাৰণ ইড়া ঋণাত্মক চ্যানেল, বাওঁফালে নিৰ্গত হৈ শেষ হয়, আৰু শৰীৰৰ বাওঁ অৰ্ধেক অংশৰ ওপৰত অধিক নিয়ন্ত্ৰণ থাকে। ইয়াৰ বিপৰীতে পিংগালা অৰ্থাৎ ধনাত্মক চ্যানেল সোঁফালে নিৰ্গত হৈ শেষ হয় আৰু শৰীৰৰ সোঁফালৰ অৰ্ধেক অংশত ইয়াৰ প্ৰভাৱ বেছি হয়। গতিকে যদি উশাহ-নিশাহৰ ছন্দ বা চক্ৰত বিঘিনি ঘটে, তেন্তে গোটেই শৰীৰৰ ব্যৱস্থাত কিছু ভাৰসাম্যহীনতাৰ সম্ভাৱনা থাকে।

স্বৰযোগত দেখা গৈছে যে ইড়া আৰু পিংগলাই পাল পাতি কাম কৰে আৰু ইহঁত ছন্দময় চক্ৰত বৈ যায়। গৱেষক সকলে লক্ষ্য কৰিছে যে নাকৰ শ্লেষ্মাৰ আৱৰণৰ পৰিৱৰ্তনৰ দ্বাৰা নিৰ্দিষ্ট হৰম’ন চক্ৰ আৰু বায়’ৰিদম ধৰা পেলাব পাৰি। গতিকে শৰীৰ, মন আৰু প্ৰাণৰ ভাৰসাম্য, সমন্বয় আৰু ভাৰসাম্য বজাই ৰাখিবলৈ হঠযোগ প্ৰদীপিকত কোৱা হৈছে- "প্ৰথমে যদি বাওঁ নাকৰ জৰিয়তে উশাহ লোৱা হয়, তেন্তে সোঁফালৰ নাকৰ জৰিয়তে উশাহ এৰি দিব লাগে। তাৰ পাছত সোঁ নাকৰ জৰিয়তে উশাহ লোৱা হয়, তেন্তে বাওঁ নাকৰ জৰিয়তে উশাহ এৰি দিব লাগে।" নদী শোধনা নামেৰে জনাজাত এই বিশেষ অনুশীলনে সমগ্ৰ ব্যৱস্থাটোত নিয়মীয়তা আনে আৰু প্ৰাণিক প্ৰবাহৰ সমন্বয়ৰ বাবে স্বৰযোগত ই অত্যন্ত গুৰুত্বপূৰ্ণ।

যোগীৰ বাবে এইটোৱেই হৈছে আটাইতকৈ উল্লেখযোগ্য স্বৰা কাৰণ ই ধ্যানৰ অনুশীলনত সহায় কৰে। সেয়েহে স্বৰ যোগৰ লক্ষ্য হৈছে উশাহ-নিশাহ কাৰ্য্যকলাপ হ্ৰাস কৰি শূণ্য স্বৰ বিকাশ কৰিবলৈ পৰ্যায়ক্ৰমে উশাহ লোৱা। আন সকলো যোগৰ দৰে স্বৰযোগতো তাত্ত্বিক লগতে ব্যৱহাৰিক দিশ সমূহক গুৰুত্ব দিয়া হয় । শিৱ স্বৰোদয়ৰ মতে: “প্ৰাণ আৰু ইয়াৰ ভিন্নতা, শক্তি পথৰ বিষয়ে, আৰু বৃহৎ বিশ্বব্ৰহ্মাণ্ডৰ বিভিন্ন তত্ত্ব বা উপাদানৰ বিষয়ে আমি বিষদ ভাবে জনা দৰকাৰ”। এনে জ্ঞানৰ প্ৰয়োগৰ জৰিয়তে স্বৰ যোগী সকলে বিশ্বব্ৰহ্মাণ্ডৰ সকলো শুভ আৰু অশুভ পৰিঘটনা জানিব পাৰে।

উশাহ-নিশাহ, প্ৰাণ শোষণ আৰু চলাচল শক্তিৰ প্ৰক্ৰিয়াত নাকে অতি গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা পালন কৰে। ই বাহ্যিক আৰু আভ্যন্তৰীণ জগতৰ মাজত শক্তি যোগা যোগৰ এক গুৰুত্বপূৰ্ণ সংযোগস্থল। যেতিয়া বাহ্যিক বায়ু নাকৰ পথৰ সংস্পৰ্শলৈ আহে, তেতিয়া নাকৰ শ্লেষ্মা আৱৰণত অৱস্থিত ক্ষুদ্ৰ ক্ষুদ্ৰ স্নায়ু ডিটেক্টৰে মগজু আৰু শক্তি বৰ্তনীলৈ প্ৰেৰণ কৰে। স্বৰ যোগে দাবী কৰে যে নাকেৰে ভিতৰলৈ আৰু বাহিৰলৈ বৈ যোৱা উশাহক বন্ধ কৰিব পাৰিলে শৰীৰৰ ভিতৰৰ ব্যৱস্থা নিয়ন্ত্ৰণ কৰিব পাৰি আৰু সকলো প্ৰাণিক আৰু মানসিক কাৰ্য্যকলাপৰ ওপৰত সম্পূৰ্ণ নিয়ন্ত্ৰণ গঢ়ি তুলিব পাৰি।

বৈজ্ঞানিক অনুসন্ধানত দেখা গৈছে যে বহুতো স্বায়ত্তশাসিত (autonomic) আৰু স্বেচ্ছামূলক (voluntary functions) কাৰ্য্য উশাহ আৰু নাকৰ গুৰিতে অৱস্থিত এই স্নায়ুৰ উপাদান সমূহৰ সৈতে জড়িত। আচলতে নাকৰ শ্লেষ্মাত থকা স্নায়ুবোৰ অন্তৰ্নিহিত, নিষ্কাশন আৰু প্ৰজনন অংগৰ সৈতে সংযুক্ত বুলি কোৱা হৈছে। অনুচিত শ্বাস-প্ৰশ্বাস আৰু নাকৰ ফুটাত উশাহ-নিশাহৰ অনিয়মিততাই এই যিকোনো অংগত বিঘিনিৰ সৃষ্টি কৰিব পাৰে । হঠযোগ প্ৰদীপিকত কোৱা হৈছে যে, হাঁপানী, কাহ, মূৰ বিষ, কাণ, চকু আৰু অন্যান্য আনুষংগিক ৰোগ উশাহ-নিশাহৰ বিঘিনিৰ ফলত সৃষ্টি হয়।

আনকি দেখা গৈছে যে নাকৰ পথত বাধা আহিলে হৃদস্পন্দন আৰু তেজৰ সঞ্চালন লেহেমীয়া হ'ব পাৰে, যাৰ ফলত কলাৰ সঠিক অক্সিডেচনত বাধা আহিব পাৰে। ইয়াৰ উপৰিও লিম্ফেটিক তৰল পদাৰ্থৰ প্ৰবাহৰ পৰিৱৰ্তন আৰু তেজ আৰু কোষীয় কলাত ক্ষাৰকীয় ভিত্তি সংৰক্ষণৰ বিঘিনিৰ জটিলতা হ'ব পাৰে, যাৰ ফলত ক্লৰাইড আৰু কেলচিয়ামৰ ঘনত্ব অধিক হয়। মন কৰিবলগীয়া যে নাকৰ গহ্বৰত স্বয়ংক্ৰিয় স্নায়ু আঁহৰ অনুপাত কেন্দ্ৰীয় স্নায়ুতন্ত্ৰৰ আন অংশতকৈ বিশ গুণ বেছি । সেয়েহে নাকক **'অটোনমিক স্নায়ুতন্ত্ৰৰ পেৰিফেৰেল অংগ'** বুলি অভিহিত কৰা হৈছে। আমি কি উশাহ লওঁ আৰু কেনেকৈ উশাহ লওঁ, সেইটোৱে আমাৰ আৱেগক প্ৰভাৱিত কৰে। হঠযোগ প্ৰদীপিকাতো একেদৰেই কোৱা হৈছে যে "যেতিয়া উশাহ-নিশাহ বিঘ্নিত হয় তেতিয়া মনটোও বিঘ্নিত হয়। উশাহ-নিশাহৰ নিয়ন্ত্ৰণে মনৰ স্থিৰতা আনিবলৈ সক্ষম হয়"। যেতিয়া আমাৰ খং উঠে তেতিয়া আমাৰ উশাহৰ গতি খৰতকীয়া হয় অৰ্থাৎ শ্বাস-প্ৰশ্বাসৰ গতি বৃদ্ধি হয় আৰু হৃৎপিণ্ডৰ কম্পনৰ হাৰ বৃদ্ধি পায়। সেই সময়ত যদি উশাহৰ গতিক কমাব পাৰোঁ বা নিয়ন্ত্ৰণ কৰিব পাৰোঁ তেন্তে নিশ্বয় খংৰ পৰিমান কমি যাব।

****

উত্তৰ-পূব ভাৰতত গছৰ মছলাৰ খেতিৰ সম্ভাৱনা

সুমনা চেতিয়া, কাজল গুপ্তা, গুৰপ্ৰীত কৌৰ ভামৰা

বৰ্ষাৰণ্য গৱেষণা প্ৰতিষ্ঠান, যোৰহাট

উত্তৰ-পূবৰ ৰাজ্যসমূহত গছৰ মছলাৰ বৃহৎ পৰিসৰৰ খেতিৰ সম্ভাৱনা আছে কাৰণ ইয়াত বিভিন্ন কৃষি-জলবায়ু অঞ্চল, ভূ-প্ৰকৃতি আৰু মাটিৰ প্ৰকাৰ পোৱা যায়। এই অঞ্চলটো মছলাৰ প্ৰধান ৰপ্তানি কেন্দ্ৰ হ'ব পাৰে কাৰণ এই অঞ্চলটো দক্ষিণ-পূব এছিয়াৰ দেশসমূহলৈ বাণিজ্যৰ খিৰিকী হিচাপে জনা যায় । উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চলৰ ৰাজ্যসমূহৰ অধিকাংশ সম্প্ৰদায়ৰ যিবোৰত নিৰামিষ আৰু অনিৰামিষভোজী সামগ্ৰী অন্তৰ্ভুক্ত কৰা হয়, সেইবোৰৰ বেছিভাগতেই গছৰ মছলাৰ প্ৰয়োজন হয় আৰু বৰ্তমান তেওঁলোকৰ প্ৰয়োজনীয়তা অন্য ৰাজ্যৰ পৰা পূৰণ কৰা হয়। ডালচেনি, তেজপাত, জাইফল, অলস্পাইচ, মিচিংগা আৰু লৱণ আদি গছৰ মছলাবোৰ উত্তৰ-পূবৰ ৰাজ্যসমূহত সৰু সৰু অঞ্চলত বনৰীয়াকৈ গজি থকা দেখা যায়। য'ত উষ্ণতা ১৫ ডিগ্ৰী চেলছিয়াছৰ তললৈ নানামে, সেই অঞ্চলত ব্যৱসায়িকভাৱে গছৰ মছলাৰ খেতি কৰাৰ অপৰিসীম সম্ভাৱনা আছে। তদুপৰি এই অঞ্চলটো চাহ, নাৰিকল, তামোল, কফি আদি বাগিচা শস্যৰ বাবে বিখ্যাত, যিয়ে গছৰ মছলাৰ সৈতে মিশ্ৰিত/আন্তঃশস্যৰ বাবে এক বৃহৎ পৰিসৰ প্ৰদান কৰে, যাৰ ফলত ইউনিট এলেকাৰ উৎপাদনশীলতা বৃদ্ধি পায়। ইয়াৰ উপৰিও multi-storey cropping system ত নাৰিকল আৰু তামোল তলত উপলব্ধ ঠাইখিনি জাইফল আৰু লৱণৰ দৰে গছৰ মছলা ৰোপণ কৰি দক্ষতাৰে ব্যৱহাৰ কৰিব পাৰি, যিয়ে বৃদ্ধি আৰু উৎপাদনৰ বাবে 50% ছাঁ পছন্দ কৰে ।

তেজপাত বা বেইলিফ (*Cinnamomum tamala*) হৈছে 2400 মিটাৰ উচ্চতালৈকে গ্ৰীষ্মমণ্ডলীয় আৰু উপগ্ৰীষ্মমণ্ডলীয় হিমালয়ত পোৱা এবিধ চিৰসেউজ সুগন্ধি গছ। উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চল ভাৰতত ই অধিক প্ৰচলিত আৰু প্ৰায়ে স্থানীয় বজাৰত

ইয়াৰ স্থান বিচাৰি পায়। ইয়াক প্ৰাকৃতিকভাৱে মেঘালয় (বছৰত 30-70 কিলোগ্ৰাম পাত উৎপাদন কৰা সৰ্বাধিক উৎপাদক), অসম আৰু অৰুণাচল প্ৰদেশত পোৱা যায়। উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ উত্তৰ কাছাৰ পাহাৰত খেতি কৰা তেজপাতৰ সতেজ পাতৰ হাইড্ৰ'ডিষ্টিলেচনৰ দ্বাৰা পোৱা তেল (0.7% essential oil) গেছ ক্ৰ'মাট'গ্ৰাফীৰ দ্বাৰা পৰীক্ষা কৰা হৈছিল আৰু ইয়াত লিনালুলৰ পৰিমাণ অধিক (linalool 60.73%) পোৱা গৈছিল।

ষ্টাৰ এনাইজ (*Illicium graffithii*)

উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চলৰ ৰাজ্যসমূহৰ ভিতৰত অৰুণাচল প্ৰদেশতহে খেতি কৰা চিৰসেউজ গছৰ মছলা, স্থানীয়ভাৱে মনপা উপভাষাত **লিছি** নামেৰে জনাজাত। ষ্টাৰ এনাইজ উচ্চ সুবনশিৰি, পশ্চিম ছিয়াং, পূব ছিয়াঙৰ জিলাসমূহ আৰু 2500 মিটাৰৰ ওপৰৰ উচ্চতাত বৃহৎ সংখ্যাত বনৰীয়াকৈ পোৱা যায়। শুকান, তৰা আকৃতিৰ ফলবোৰ মছলা হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰা হয়, যাৰ সোৱাদ aniseed বা fennel সৈতে যথেষ্ট মিল আছে। ষ্টাৰ এনাইজ হৈছে শ্বিকিমিক এচিডৰ (shikimic acid) প্ৰধান উৎস (10.5%), যিটো এন্টি-ইনফ্লুৱেঞ্জা ঔষধ (Tamiflu) সংশ্লেষণৰ প্ৰাথমিক পূৰ্বসূৰী। শ্বিকিমিক এচিড, এন্টিভাইৰেল আৰু এন্টি-ইনফ্লেমেটৰী প্ৰভাৱৰ বাবে বিখ্যাত। অৰুণাচল প্ৰদেশত পোৱা এই ষ্টাৰ এনাইজত উচ্চ শ্বিকিমিক এচিড (12-18%) থাকে, যিয়ে এই ৰাজ্যত ষ্টাৰ এনাইছ ব্যৱসায়িকভাৱে খেতি কৰাৰ সম্ভাৱনীয়তাৰ ইংগিত দিয়ে।

মিচিংগা বা চিচুয়ান জালুকৰ গুটি (*Zanthoxylum spp.*) হৈছে পৰ্ণপাতী জোপোহা বা সৰু গছ । পাত আৰু ফল (জালুকৰ গুটি) দুয়োটাকে খাদ্য আৰু পানীয়ৰ সোৱাদ দিয়াত সুগন্ধি মছলা হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰা হয়। মিচিংগাৰ essential oil ত লিনালুল (linalool) আৰু লিমোনিন (limonene) থকাৰ বাবে এই মছলাৰ ছাইট্ৰাছৰ সুগন্ধি প্ৰবল হয়। উত্তৰ-পূব ভাৰতত পৰম্পৰাগতভাৱে পাত, ফল-মূল

আৰু বাকলি মুখ সতেজ কৰি ৰখা আৰু দাঁতৰ যত্নৰ বাবে ব্যৱহাৰ কৰা হয়। মিচিংগা ৰ essential oil আৰু এলকেল'ইডৰ উপস্থিতিৰ কেইবাটাও এন্টিভাইৰেল, এন্টিফাংগেল আৰু এন্টিঅক্সিডেন্ট গুণ পোৱা যায়। এই অব্যৱহৃত মছলা গছজোপা অসম, নাগালেণ্ড আৰু মণিপুৰত বনৰীয়াকৈ গজি থকা দেখা যায়।

ডালচেনি (*Cinnamomum verum*) ভাৰতৰ উত্তৰ-পূবতো বিশেষকৈ মেঘালয়ৰ খাচী আৰু জয়ন্তীয়া পাহাৰত খেতি কৰা চিৰসেউজ গছৰ মছলা। গছজোপাই 10-15 মিটাৰ উচ্চতা লাভ কৰিব পাৰে, কিন্তু খেতিৰ সময়ত সাধাৰণতে কাষৰ শিপাৰ বিকাশত উৎসাহিত কৰিবলৈ মাটিৰ পৰা প্ৰায় 15 চে.মি. কটা যায়। বাণিজ্যিক ডালচেনি হৈছে শুকান পাতল হালধীয়া-বাদামী ৰঙৰ মসৃণ পাতল বাকলি (0.5 mm)। এই অঞ্চলৰ পৰা খেতি কৰা ডালচেনি উত্তম গুণমানৰ আৰু মিঠা সোৱাদ ৰ বাবে জনাজাত। বাণিজ্যিক সামগ্ৰীৰ মূল উপাদান পাতৰ তেল হৈছে eugenol (75-80%) আৰু বাকলিৰ তেল হৈছে cinnamaldehyde (65%)। মাজৰ অংশৰ পৰা কেন্দ্ৰত থকা ডালৰ পাতল বাকলিৰ পৰা ডালচেনিৰ উত্তম গুণ পোৱা যায়।

জাইফল (*Myristica fragrans*) হৈছে গ্ৰীষ্মমণ্ডলীয় চিৰসেউজ গছৰ মছলা। দেশৰ অন্যান্য অঞ্চলৰ লগতে উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ কিছু অঞ্চলত খেতি কৰা হয়। এই অনন্য মছলা গছ দুটা মছলাৰ বাবে জনাজাত হয়: (i) ইয়াৰ বীজৰ পৰা জাইফল (Nutmeg) (ii) বীজৰ আৱৰণৰ পৰা মেচ (Mace)। ইয়াৰ উপৰিও জাইফলৰ essential oil (6-16%), ফিক্সড অইল আৰু জাইফল মাসন (Butter) ৰ ব্যৱসায়িক উৎস। কিন্তু কীট-পতংগ আৰু ৰোগৰ সংক্ৰমণ, বৈজ্ঞানিক খেতি পদ্ধতি গ্ৰহণ নকৰা, শস্য চপোৱাৰ পিছত সঠিকভাৱে চম্ভালিব নোৱাৰাৰ বাবে উৎপাদন কম দেখা যায়। জাইফলৰ ফলৰ ছালৰ পৰা কেইবাটাও খাদ্য সামগ্ৰী যেনে জাম, জেলী আৰু আচাৰ প্ৰস্তুত কৰা হয় কাৰণ ইয়াত ভাল মানৰ পেক্টিন থাকে। উষ্ণ আৰ্দ্ৰ

জলবায়ু, জৈৱিক সমৃদ্ধ মাটি আৰু উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চলৰ আশ্ৰয়প্ৰাপ্ত উপত্যকা অঞ্চলৰ বাবে ইয়াক বৃহৎ পৰিসৰত ব্যৱসায়িক খেতিৰ বাবে উপযোগী কৰি তুলিছে।

বৰ্তমান উত্তৰ-পূব ভাৰতত কোনো গছৰ মছলা ব্যৱসায়িকভাৱে খেতি কৰা নহয়। একেদৰে ইয়াৰ চহকী জৈৱ বৈচিত্ৰ্য, আদৰ্শ মাটি আৰু জলবায়ুৰ অৱস্থাৰ বাবে উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চলৰ ৰাজ্যসমূহত এই গছৰ মছলাৰ খেতিৰ এক বৃহৎ পৰিসৰ আছে। তদুপৰি এই অঞ্চলত জৈৱিক মছলা উৎপাদনৰ যথেষ্ট সম্ভাৱনা আছে, যাৰ ফলস্বৰূপে ঘৰুৱা আৰু আন্তঃৰাষ্ট্ৰীয় উভয় বজাৰতে ৰাসায়নিক মুক্ত সামগ্ৰীৰ উপলব্ধতা প্ৰদান কৰিব পাৰি।

তেজপাত বা বেইলিফ (*Cinnamomum tamala*)

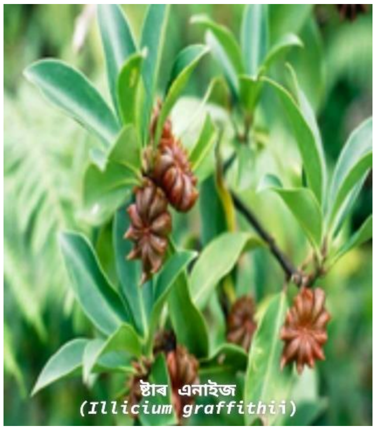
ষ্টাৰ এনাইজ (*Illicium graffithii*)

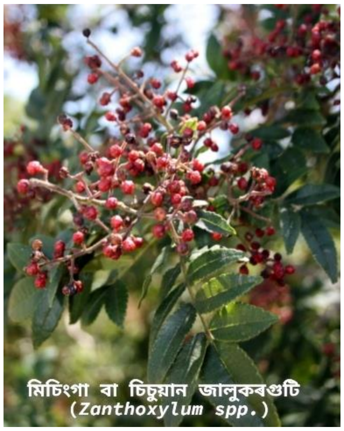
মিচিংগা বা চিচুয়ান জালুকৰগুটি (*Zanthoxylum spp.*)

ডালচেনি (*Cinnamomum verum*)

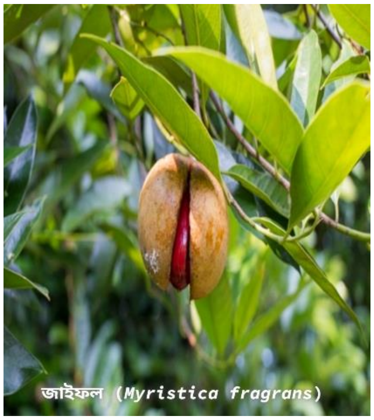
জাইফল (*Myristica fragrans*)

****

অৰণ্য

লোহিত চন্দ্ৰ তামুলী
বৰ্ষাৰণ্য গৱেষণা প্ৰতিষ্ঠান, যোৰহাট

এদিন আছিলোঁ আমি আদিম, অজ্ঞ, অঘৰী
প্ৰকৃতিৰ উন্মুক্ত কোলাত সাৰথি আছিল অৰণ্য;
মৌলিক প্ৰয়োজন পূৰণ জীৱনৰ উত্তৰণ হেতু
শিক্ষা, জ্ঞান তথা সমলৰ অন্যতম উৎস।

লজ্জা নিবাৰণ হেতু গছৰ বাকলি বসন
আজিও বস্ত্ৰৰ বাবে উদ্ভিদেই প্ৰধান সমল;
ভোকত জৰ্জৰিত হৈ হাত মেলো উদ্ভিদলৈ
ৰোগত কাতৰ হলে ঔষধ কৰো আহৰণ।

জাৰ, জহ,বিপদত অৰণ্যই দিলে আশ্ৰয়
ইতৰ প্ৰাণীক বুজি সাজিব শিকিলোঁ ঘৰ;
নিজৰ কল্যাণৰ বাবে গছক বলি দিলোঁ
পৰিচয় দিলোঁ আমি জীৱশ্ৰেষ্ঠ, উন্নত মানৱৰ।

অকৃতজ্ঞ মানৱ জাতিক বিজ্ঞানৰ অৱদান দি
বিৰিখে জীৱন দিয়ে বিশুদ্ধ বায়ু যোগাই;
বিজ্ঞানেৰে যন্ত্ৰ গঢ়ি ক্ষিপ্ৰতাৰে গছ কাটি
মানুহে প্ৰতিদান দিয়ে গছৰ আয়ুস কমাই।

আধুনিক শিক্ষা ল’লোঁ উন্নত বৃত্তি পালোঁ
গৰ্বৰে পৰিচয় দিও অৰণ্যৰ সেৱক বুলি;
অৰ্থৰ বাবেই মাথোঁ গোপনে অৰণ্য বিনাশো
তথাপি লাজ নকৰোঁ যদিও অকৃতজ্ঞ আমি।

গুণী, জ্ঞানী মনিষীসকলে উপদেশ,পৰামৰ্শ দিয়ে
জীৱনৰ শেষ বয়সত বানপ্ৰস্থ উত্তম উপায়;
আমি মহাজ্ঞানী হলোঁ প্ৰকৃতিৰ বিপৰীতে চলোঁ
অৰণ্যকে দিব খোজোঁ অকালতে অন্তিম বিদায়।

অৰণ্যই যুগে যুগে স্বধৰ্ম বৰ্তাই ৰাখে
মানৱে ছায়াতে জিৰায় জ্ঞান, প্ৰেৰণা নাপায়;
অৰণ্যক গ্ৰাস কৰে স্বাৰ্থান্ধ, অবিবেকী জন অৰণ্যই
নিজৰ লগতে জগতৰ অন্তহীন বিপদ চপায় ।

বিশ্বৰ সুবিশাল জনগণৰ সামান্য সংখ্যকে অৰণ্য গঢ়ে
জীৱন ধন্য সিসবৰ, জনাওঁ সশ্ৰদ্ধ প্ৰণাম;
প্ৰত্যেক মানৱে যদি কিছু অৱদান দিয়ে
ধৰণী হৈ ৰ'ব বিশ্বব্ৰহ্মাণ্ডৰ শ্ৰেষ্ঠতম স্থান।।

****

स्वरचित कविता

धरती की पुकार

मुना तामांग
भा.वा.अ.शि.प-वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट

नदी की धारा में बहते हैं सपने,
पेड़ों की शाख़ों में बसते हैं अपने।
धरती की गोद में खिलती है हररयाली,
हवा में घुली है जीवन की खुशबू निराली।

पक्षी गाते हैं गीत, सूरज लाता है रौशनी,
हर फूल में छिपी है सृष्टि की कहानी।
आकाश में बादलों का घेराघना,
हर सुबह दिखाती है एक सपना सुनहरा।

ये धरती हमारी माँ है, इसे हमें सहेजना,
प्रकृति की गोद में ही जीवन है बसा।
पेड़ों को बचाना है, जंगल को फिरसे सजाना है,
इस धरती के आँचल में हमें हरियाली को फैलाना है।

बंजर भूमि को फिरसे हरा-भरा करना है,
सूखते जल स्रोतों को हमको फिर से भरना है।
बादल बरसते हैं जब धरती मुस्कुराती है,
प्रकृति की हर साँस में जीवन बसा है, यह सिखाती है।

आओ, मिलकर जल बचाएं, पेड लगाएं,
साँसों में साफ़ हवा का एहसास लाएं।
धरती को फिर से स्वर्ग सा सुंदर बनाएंगे,
हम सब मिलकर इसे सहेजने का वचन निभाएंगे।

हर कण, हर बूंद, हर पत्ता हमें पुकारता,
प्रकृति का संतुलन हमें फिर से संवारता।
आओ, इस पुकार को सुनें,
धरती को हरा-भरा बनाए रखने में जुटें

असम के हृदय में, जहाँ नदियाँ चमकती हैं,
एक जीवित सपने की शाश्वत सुंदरता निहित है।

संस्थान की राजभाषा गतिविधियाँ/उपलब्धियाँ

हिन्दी सप्ताह-2024 समारोह का आयोजन

भा.वा.अ.शि.प.-वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट में डॉ. नितिन कुलकर्णी, माननीय निदेशक के नेतृत्व एवं मार्गदर्शन में राजभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए विगत वर्षों की भाँति दिनांक 14-20 सितम्बर, 2024 तक हिन्दी सप्ताह कार्यक्रम का आयोजन किया गया। कार्यक्रम के दौरान आयोजित राजभाषा हिन्दी प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता, कविता पाठ प्रतियोगिता आदि में हर वर्ग के कर्मचारियों यथा वैज्ञानिक, अधिकारी, कर्मचारिवृंद एवं अन्य परियोजना स्टाफ ने बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया एवं दिनानुदिन कार्यों में राजभाषा हिन्दी के प्रयोग करने का संकल्प लिया। इस अवसर पर कार्मिकों को **"स्वतंत्र भारत की राजभाषा-हिन्दी"** विषयक लघु वृत्तचित्र दिखाया गया।

डॉ. नितिन कुलकर्णी, निदेशक, भा.वा.अ.शि.प.- व.व.अ.सं., जोरहाट; हिन्दी सप्ताह-2024 कार्यक्रम में उपस्थित प्रभागाध्यक्षों, वरिष्ठ वैज्ञानिकों, अधिकारियों एवं कर्मचारीवृंद को संबोधित करते हुए

हिन्दी सप्ताह-2024 की कुछ अन्य झलकियाँ...

हिन्दी कविता पाठ प्रतियोगिता में प्रतिभागिता

निदेशक महोदय द्वारा प्रमाणपत्र लेते हुए विजेतागण

डॉ. नितिन कुलकर्णी, निदेशक, भा.वा.अ.शि.प.- व.व.अ.सं., जोरहाट के कर-कमलों द्वारा प्रमाणपत्र ग्रहण करते हुए संस्थान के अधिकारी व कर्मचारीगण

डॉ. नितिन कुलकर्णी, निदेशक, भा.वा.अ.शि.प.- व.व.अ.सं., जोरहाट के कर-कमलों द्वारा प्रमाणपत्र ग्रहण करते हुए संस्थान के अधिकारी व कर्मचारीगण

राजभाषा कार्यान्वयन समिति की त्रैमासिक बैठक

संस्थान में बेहतर राजभाषा कार्यान्वयन से संबंधित विषयों पर महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने के लिए बैठकें (27.03.2024/ 25.06.2024/ 27.12.2024) आयोजित की गई जिसमें संस्थान के निदेशक सहित सभी प्रभाग/ अनुभागों/ प्रकोष्ठों के प्रमुख ने भाग लिया।

भा.वा.शि.प.-व.व.अ.सं., जोरहाट की राजभाषा कार्यान्वयन समिति की त्रैमासिक बैठक में उपस्थित अध्यक्ष सह संस्थान निदेशक डॉ. नितिन कुलकर्णी सहित समिति के सभी सदस्यगण

हिन्दी कार्यशाला

संस्थान में कंठस्थ 2.0 (सैद्धांतिक व व्यावहारिक) विषय पर दिनांक 18.03.2024 को एक दिवसीय हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया गया जिसमें कार्यशाला में कुल 10 अधिकारियों/कर्मचारियों ने भाग लिया।

कंठस्थ 2.0 पर कार्यशाला श्रृंखला को आगे बढ़ाते हुए संस्थान में राजभाषा विभाग, भारत सरकार द्वारा विकसित स्मृति आधारित अनुवाद सॉफ्टवेयर/टूल पर कुल दो और (06-11.06.2024, 18.06.2024) हिन्दी प्रशिक्षण कार्यशाला आयोजित किया गया जिसमें सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों को उक्त सॉफ्टवेयर में मशीनी अनुवाद करना, ट्रांसलेशन मेंमोरी की विशेषताएं, मोबाइल एप तथा पंजीकरण आदि से जुड़े विविध विषयों पर जानकारी प्रदान किया गया। कार्यशाला में कलु 52 अधिकारियों/कर्मचारीगण ने सहभागिता किया।

संस्थान में माननीय निदेशक डॉ. नितिन कुलकर्णी के मार्गदर्शन में संसदीय राजभाषा की तीसरी उपसमिति द्वारा आयोजित होने वाली राजभाषाई निरीक्षण के बारे में कार्मिकों को जागरूक करने के लिए दिनांक 28.02.2025 को निरीक्षण प्रश्नावली पर प्रशिक्षण कार्यशाला का आयोजन किया गया।

कंठस्थ 2.0 विषय पर एक दिवसीय (18.03.2024) हिन्दी कार्यशाला

कंठस्थ 2.0 विषय कार्यशाला में सहभागिता करते संस्थान के विभिन्न प्रभागों/अनुभागों/प्रकोष्ठों से चयनित अधिकारी एवं कर्मचारीगण

हिन्दी कार्यशाला में संस्थान निदेशक डॉ. नितिन कुलकर्णी महोदय उपस्थित अधिकारियों/कर्मचारियों को कंठस्थ 2.0 टूल का महत्त्व बताते हुए

कंठस्थ 2.0 विषय कार्यशाला में सहभागिता करते संस्थान के विभिन्न प्रभागों/अनुभागों/प्रकोष्ठों से चयनित अधिकारी एवं कर्मचारीगण

दिनांक 28.02.2025 को संस्थान निदेशक डॉ. नितिन कुलकर्णी द्वारा संसदीय राजभाषा की तीसरी उपसमिति द्वारा आयोजित होने वाली राजभाषाई निरीक्षण के प्रश्नावली से संबंधित विषय में हिन्दी कार्यशाला श्रृंखला का उद्घाटन

संस्थान की वार्षिक ई-पत्रिका "वर्षारण्यम-2023" (संस्करण-6) का प्रकाशन

संस्थान की हिन्दी-असमिया द्विभाषी वार्षिक ई-पत्रिका वर्षारण्यम-2023, संस्करण-6 का विमोचन दिनांक 07.03.2024 को श्रीमती कंचन देवी, महानिदेशक, भा.वा.अ.शि.प., देहरादून के कर-कमलों द्वारा हुआ। वर्षारण्यम-2023 ई-पत्रिका में हिन्दी और असमीया भाषा में संस्थागत अनुसंधान और राजभाषा गतिविधियाँ सम्मिलित किया गया है।

वार्षिक ई-पत्रिका वर्षारण्यम-2023, संस्करण-6 का श्रीमती कंचन देवी, महानिदेशक, भा.वा.अ.शि.प., देहरादून के कर-कमलों द्वारा विमोचन

त्रैमासिक हिन्दी संवाद-पत्रिका (न्यूजलैटर) के उद्घाटन अंक का प्रकाशन

संस्थान में त्रैमासिक हिन्दी संवाद-पत्रिका (अक्टूबर-दिसम्बर, 2023) के उद्घाटन अंक का विमोचन दिनांक 21 मार्च, 2024 को डॉ. नितिन कुलकर्णी, निदेशक, भा.वा.अ.शि.प.- व.व.अ.सं., जोरहाट द्वारा किया गया। त्रैमासिक हिन्दी संवाद-पत्रिका (न्यूजलैटर) में संस्थान के महत्त्वपूर्ण अनुसंधान उपलब्धियाँ, कार्यशाला, संगोष्ठी, बैठक, प्रशिक्षण कार्यक्रम, जागरूकता एवं प्रदर्शन कार्यक्रम, समझौता ज्ञापन, सांस्कृतिक कार्यक्रम, नवीन प्रकाशन जैसे संस्थागत अनुसंधान और विस्तार गतिविधियों के संबंध में रोशनी डालती है।

डॉ. नितिन कुलकर्णी, निदेशक, भा.वा.अ.शि.प.- व.व.अ.सं., जोरहाट के कर-कमलों द्वारा त्रैमासिक हिन्दी संवाद-पत्रिका (अक्टूबर-दिसम्बर, 2023) के उद्घाटन अंक का विमोचन

वृक्ष उत्पादक मेंला में त्रैभाषिक स्मारिका का प्रकाशन

भा.वा.अ.शि.प.-वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट में दिनांक 7-8 मार्च, 2024 के दौरान आयोजित वृक्ष उत्पादक मेंला में त्रैभाषिक (असमिया, हिन्दी एवं अंग्रेजी) स्मारिका का विमोचन श्रीमती कंचन देवी, महानिदेशक, भा.वा.अ.शि.प., देहरादून के कर-कमलों द्वारा हुआ।

श्रीमती कंचन देवी, महानिदेशक, भा.वा.अ.शि.प., देहरादून के कर-कमलों द्वारा त्रैभाषिक स्मारिका (असमीया, हिन्दी एवं अंग्रेजी) का विमोचन

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (न.रा.का.स.), जोरहाट की बैठक में सहभागिता

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, जोरहाट (असम) की 41वीं बैठक दिनांक 22 मार्च, 2024 को अपराह्न 03.00 बजे उत्तर-पूर्व विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी संस्थान, जोरहाट के सेंटर फॉर पेट्रोलियम रिसर्च भवन स्थित एम एस अयंगर सेमिनार हॉल में आयोजित किया गया। अध्यक्ष, नराकास-जोरहाट सह निदेशक के अतिव्यस्तता के कारण तत्काल मनोनीत मुख्य वैज्ञानिक डॉ. एस.बी. वान, सीएसआईआर-निस्ट, जोरहाट की अध्यक्षता में बैठक सम्पन्न हुई। बैठक में भारत सरकार, गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग, क्षेत्रीय कार्यान्वयन कार्यालय (पूर्वोत्तर), गुवाहाटी के परामर्शदाता एवं कार्यालय प्रधान श्री बदरी यादव मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित रहें। बैठक में सदस्य कार्यालय भा.वा.अ.शि.प.- वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट की ओर से डॉ. विश्वनाथ शर्मा, वैज्ञानिक-सी एवं तथा श्री शंकर शॉ, कनिष्ठ अनुवाद अधिकारी ने भाग लिया।

श्री बदरी यादव द्वारा भा.वा.अ.शि.प.-वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट ने कंठस्थ 2.0 पर कार्यशाला आयोजित करने, वृक्ष उत्पादक मेंला के आयोजन, त्रैभाषिक स्मारिका के प्रकाशन, हिन्दी त्रैमासिक संवाद-पत्रिका (न्यूजलैटर) के प्रकाशन, वर्षारण्यम वार्षिक द्विभाषी ई-पत्रिका के प्रकाशन को अनुकरणीय बताया।

दिनांक 22 मार्च, 2024 को नराकास, जोरहाट की 41वीं बैठक का दृश्य

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, जोरहाट द्वारा संस्थान को प्रथम पुरस्कार

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (नराकास), जोरहाट की 42वीं बैठक का आयोजन अध्यक्ष कार्यालय सीएसआईआर-उत्तर पूर्व विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी संस्थान, जोरहाट के एम एस अयंगर सभा कक्ष में दिनांक 06 फरवरी, 2025 को अपराह्न 03.00 बजे की गयी। डॉ. वी.एम. तिवारी अध्यक्ष, नराकास-जोरहाट सह निदेशक, सीएसआईआर-निस्ट, जोरहाट की अध्यक्षता में बैठक सम्पन्न हुई।

जोरहाट शहर में अवस्थित केंद्र सरकार के कार्यालयों के बीच वर्ष 2023-24 के दौरान राजभाषा हिन्दी कार्यान्वयन के बेहतर प्रदर्शन एवं उत्कृष्ट कार्य संपादन के लिए भा.वा.अ.शि.प.-वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट को नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (न.रा.का.स.), जोरहाट की 42वीं बैठक में 06 फरवरी, 2025 को प्रथम पुरस्कार के रुप में शील्ड के साथ यह प्रशस्ति पत्र प्रदान किया गया। बैठक में संस्थान की ओर से निदेशक डॉ. नितिन कुलकर्णी सहित डॉ. विश्वनाथ शर्मा, वैज्ञानिक-सी एवं हिन्दी नोडल अधिकारी तथा श्री शंकर शॉ, कनिष्ठ अनुवाद अधिकारी ने सहभागिता किया।

नराकास, जोरहाट द्वारा प्रथम पुरस्कार स्वरूप प्रशस्ति-पत्र एवं शील्ड ग्रहण करते डॉ. नितिन कुलकर्णी, निदेशक

भा.वा.अ.शि.प. देहरादून द्वारा संस्थान को वर्ष 2023-24 का राजभाषा प्रोत्साहन पुरस्कार

भा.वा.अ.शि.प.-वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट असम को भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून द्वारा वित्तीय वर्ष 2023-24 के दौरान राजभाषा हिंदी के कार्यान्वयन में उत्कृष्ट प्रदर्शन के लिए 'ग' क्षेत्र स्थित संस्थानों में राजभाषा प्रोत्साहन पुरस्कार स्वरूप प्रशस्ति पत्र एवं शील्ड प्रदान किया गया। यह घोषणा दिनांक 30.09.2024 को भा.वा.अ.शि.प., देहरादून के हिन्दी पखवाड़ा-2024 के समापन समारोह में किया गया। संस्थान की ओर स्वयं श्रीमती कंचन देवी, महानिदेशक, भा.वा.अ.शि.प., देहरादून ने राजभाषा प्रोत्साहन पुरस्कार स्वरूप प्रशस्ति पत्र एवं शील्ड ग्रहण किया।

भा.वा.अ.शि.प.- व.व.अ.सं., जोरहाट द्वारा सीएसाईआर-निस्ट, जोरहाट के राजभाषा कार्यशाला में विषय-विशेषज्ञ के रूप में सहभागिता

दिनांक 17 सितम्बर, 2024 को जोरहाट अवस्थित नराकास अध्यक्ष कार्यालय 'सीएसआईआर-उत्तर-पूर्व विज्ञान और प्रौद्योगिकी संस्थान, जोरहाट' द्वारा अनुवाद टूल/सॉफ्टवेयर "कंठस्थ 2.0" विषय पर एक दिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया गया, जिसमें भा.वा.अ.शि.प.- व.व.अ.सं., जोरहाट से श्री शंकर शॉ, कनिष्ठ अनुवाद अधिकारी ने विषय-विशेषज्ञ के रूप में अधिकारियों/कर्मचारियों को प्रशिक्षित किया। कार्यक्रम में लगभग 40 से अधिक अधिकारीगण एवं कर्मचारिवृंद ने प्रतिभाग किया।

दिनांक 19 सितम्बर, 2024 को जोरहाट अवस्थित नराकास अध्यक्ष कार्यालय 'सीएसआईआर-उत्तर-पूर्व विज्ञान और प्रौद्योगिकी संस्थान, जोरहाट' द्वारा राजभाषा आधारित प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता का आयोजन किया गया, जिसमें भा.वा.अ.शि.प.- व.व.अ.सं., जोरहाट से श्री शंकर शॉ, कनिष्ठ अनुवाद अधिकारी ने अतिथि क्वीज़ संचालक के

रूप में अधिकारियों/कर्मचारियों को राजभाषा के प्रति प्रेरित किया। कार्यक्रम में लगभग 35 अधिकारियों व कर्मचारियों ने प्रतिभाग किया।

भा.वा.अ.शि.प.- व.व.अ.सं., जोरहाट द्वारा केन्द्रीय मूगा एरी अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, जोरहाट के राजभाषा कार्यशाला में विषय-विशेषज्ञ के रूप में सहभागिता

दिनांक 28 सितम्बर, 2024 को केंद्रीय रेशम बोर्ड-केंद्रीय मूगा एरी अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, लाहदोईगढ़, जोरहाट द्वारा अनुवाद टूल/सॉफ्टवेयर "कंठस्थ 2.0" विषय पर एक दिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया गया, जिसमें भा.वा.अ.शि.प.- व.व.अ.सं., जोरहाट से श्री शंकर शॉ, कनिष्ठ अनुवाद अधिकारी ने विषय-विशेषज्ञ के रूप में अधिकारियों/कर्मचारियों को प्रशिक्षित किया। कार्यक्रम में लगभग 30 से अधिक अधिकारीगण एवं कर्मचारिवृंद ने प्रतिभाग किया।

भा.वा.अ.शि.प.- व.व.अ.सं., जोरहाट के श्री शंकर शॉ, कनिष्ठ अनुवाद अधिकारी अधिकारियों एवं कर्मचारियों को संबोधित करते हुए

राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा आयोजित प्रशिक्षण कार्यक्रम में सहभागिता

राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा सी-डैक, पुणे के तकनीकी सहयोग से निर्मित कंठस्थ-2.0 विषय पर दिनांक 12.02.2025 को नई दिल्ली में आयोजित एक दिवसीय प्रशिक्षण कार्यशाला में भा.वा.अ.शि.प.- वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट के डॉ. विश्वनाथ शर्मा, वैज्ञानिक-सी एवं हिन्दी केंद्रक अधिकारी तथा श्री शंकर शॉ, कनिष्ठ अनुवाद अधिकारी ने प्रशिक्षु के रूप में सहभागिता की।

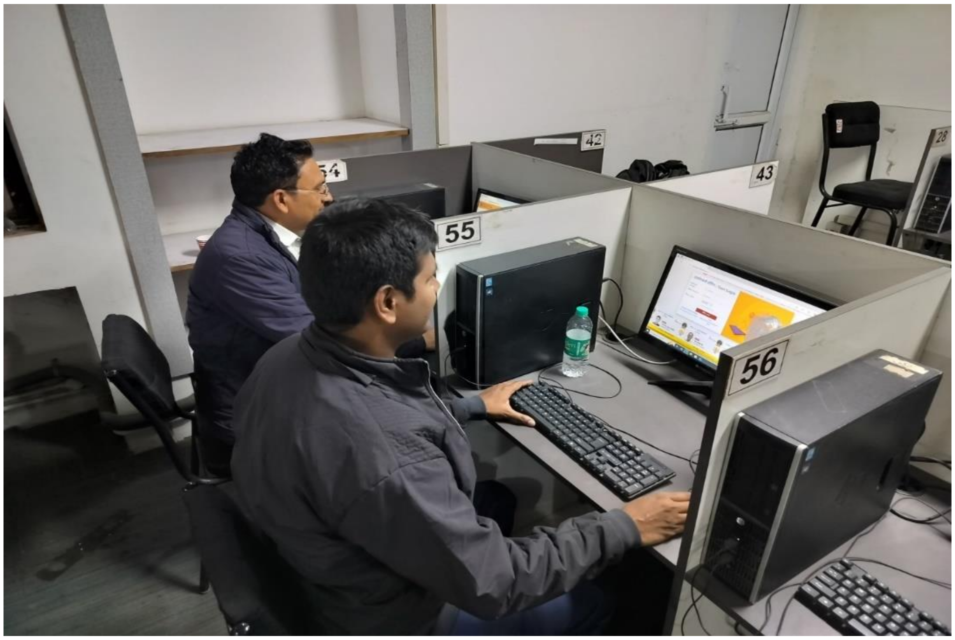

राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा आयोजित संयुक्त क्षेत्रीय राजभाषा सम्मेलन में सहभागिता

भारत सरकार, गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग द्वारा दिनांक 05 मार्च, 2025 को मेफेयर स्प्रिंग वैली रिसॉर्ट, टेपेसिया गार्डन रोड, सोनापुर, गुवाहाटी, असम में पूर्व एवं पूर्वोत्तर क्षेत्र के लिए क्षेत्रीय राजभाषा सम्मेलन का आयोजन किया गया। भा.वा.अ.शि.प.- वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट के निदेशक डॉ. नितिन कुलकर्णी तथा श्री शंकर शॉ, कनिष्ठ अनुवाद अधिकारी ने उक्त सम्मेलन में सहभागिता की।

भा.वा.अ.शि.प.- व.व.अ.सं., जोरहाट द्वारा CMER&TI, जोरहाट के राजभाषा कार्यशाला में सहभागिता

भा.वा.अ.शि.प.- वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट के श्री शंकर शॉ, कनिष्ठ अनुवाद अधिकारी ने केंद्रीय मूगा एरी अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, लाहदोईगढ़, जोरहाट, असम द्वारा दिनांक 29.03.2025 को आयोजित राजभाषा कार्यान्वयन समिति की 88वीं बैठक तथा संसदीय राजभाषा समिति एवं उसका निरीक्षण प्रश्नावली विषय पर एक दिवसीय राजभाषा कार्यशाला में विषय-विशेषज्ञ के रूप में सहभागिता की। कार्यशाला का शुभारम्भ डॉ. कार्तिक नेउग, निदेशक, कें.मू.ए.अ.प्र.स., लाहदोईगढ़, जोरहाट के संबोधन के साथ हुआ। कार्यशाला में श्री शॉ ने संसदीय राजभाषा समिति की संरचना, महत्त्व तथा समिति की राजभाषा से संबंधित प्रश्नावली इत्यादि विषय पर पृष्ठवार विस्तृत चर्चा की।

एड़ी मूगा संस्थान में 88वीं बैठक व हिंदी कार्यशाला का आयोजन

टियोक, 29 मार्च (नि.सं.)। जोरहाट के निकटवर्ती लाहदैगढ़ स्थित केंद्रीय एड़ी, मूगा अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान में शनिवार को निदेशक डॉ. कार्तिक नेओग की अध्यक्षता में संस्थान की राजभाषा कार्यान्वयन समिति की 88वीं बैठक और एक-दिवसीय हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया गया। कार्यक्रम में संस्थान के सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया। श्रीमती मंलेम देवी, सहायक निदेशक (राजभाषा), केमूएअप्रसं, लाहदैगढ़ ने राजभाषा कार्यान्वयन समिति की तिमाही बैठक में पीपीटी के माध्यम से संस्थान की राजभाषा हिन्दी के प्रगामी प्रयोग से संबंधित विवरण प्रस्तुत किया तथा संस्थान की राजभाषा हिन्दी की तिमाही गतिविधियां, महत्वपूर्ण उपलब्धियां आदि के बारे में विस्तृत जानकारी दी। बैठक में शंकर शॉ, कनिष्ठ अनुवाद अधिकारी, जोरहाट भी उपस्थित थे।

हिन्दी कार्यशाला संसदीय राजभाषा समिति और उसके निरीक्षण प्रश्नावली विषय पर आयोजित किया गया, जिसमें विषय-विशेषज्ञ के तौर पर शंकर शॉ, कनिष्ठ अनुवाद अधिकारी वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट ने संस्थान के निदेशक के साथ सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों को पीपीटी के माध्यम से संसदीय राजभाषा समिति और उसके निरीक्षण प्रश्नावली पर जागरूक करते हुए विभिन्न पहलुओं पर विस्तारपूर्वक जानकारी दी। निरीक्षण प्रश्नावली के हर पृष्ठ से अवगत कराते हुए संस्थान निदेशक सहित सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों को उनके जिम्मेदारियों से अवगत कराया। उन्होंने संस्थान की राजभाषा कार्यान्वयन समिति के अध्यक्ष सहित सभी समिति-सदस्यों को शतप्रतिशत कार्य हिन्दी में करने का अनुरोध किया, ताकि उनके अधिनस्थ कार्मिक हिन्दी में काम-काज करने के लिए हमेशा प्रेरित रहें।

छाया : राज

निदेशक कार्तिक नेओग ने दोनों कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए अपने संबोधन में संस्थान के राजभाषा हिन्दी की गतिविधियों की जानकारी दी। उन्होंने संस्थान के हिन्दी में कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों को राजभाषा हिन्दी में शत-प्रतिशत काम-काज करने का निर्देश दिया। साथ ही हिन्दी पत्राचार, हिन्दी टिप्पण एवं राजभाषा अधिनियम, 1963 की धारा 3(3) के अंतर्गत आने वाले सभी दस्तावेजों को द्विभाषी रूप में अनिवार्य रूप से जारी करने के सख्त निर्देश दिए। उन्होंने संस्थान के सभी प्रवीणता प्राप्त अधिकारियों/कर्मचारियों को शत-प्रतिशत कार्य हिन्दी करने के लिए विशेष निर्देश दिया।

उन्होंने भी कार्मिकों को क एवं ख क्षेत्र से प्राप्त अंग्रेजी पत्रों के जवाब भी अनिवार्य रूप से हिन्दी में देने के निर्देश दिए। कार्यक्रम का सफल संचालन एवं धन्यवाद ज्ञापन मंलेम देवी, सहायक निदेशक केंद्रीय मूगा एड़ी अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान (राजभाषा) लाहदैगढ़ ने किया।

****

भा.वा.अ.शि.प.- वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट की राजभाषा कार्यान्वयन समिति (2024-25)

क्र.सं.	नाम एवं पदनाम	पद
1.	डॉ. नितिन कुलकर्णी, निदेशक	अध्यक्ष, रा.भा.का.स.
2.	डॉ. राजीब कुमार बोरा, वैज्ञानिक-जी	उपाध्यक्ष, रा.भा.का.स.
3.	श्री राजीब कुमार कलिता, वैज्ञानिक-एफ	सदस्य
4.	डॉ. ध्रुब ज्योति दास, वैज्ञानिक-एफ	सदस्य
5.	श्री राजेश कुमार, वैज्ञानिक-एफ	सदस्य
6.	श्री इमोटेम्सू आओ, डी.सी.एफ.	सदस्य
7.	डॉ. सत्यम बरदलै, वैज्ञानिक-ई	सदस्य
8.	डॉ. विश्वनाथ शर्मा, वैज्ञानिक-सी एवं नोडल अधिकारी (हिन्दी)	सदस्य
9.	श्री पोवाल सोनोवाल, अनुभाग अधिकारी	सदस्य
10.	श्री शंकर शॉ, कनिष्ठ अनुवाद अधिकारी	सदस्य

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें -

भा.वा.अ.शि.प.- वर्षा वन अनुसंधान संस्थान
(पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय की एक स्वायत्त संस्थान)
ए.टी. रोड (पूर्व), पी.ओ.- चेनीजान, देववन, सोताई, जोरहाट,
असम-785010
ईमेल : dir_rfri@icfre.org, दूरभाष- 0376-2305101
वेबसाईट: rfri.icfre.gov.in